हिंदी-कोविद-रत्नमाला

अर्थात्

हिंदी के चालीस विद्वानों और सहायकों के सचित्र जीवनचरितों का संग्रह।

दूसरा भाग।

श्यामसुंदरदास बी० ए० संकलित।

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

द्वितीयावृत्ति] १९२१ [मूल्य २)

निवेदन

सन् १९०९ ई० में मैंने इस रत्नमाला का पहला भाग संकलित करके प्रकाशित कराया था। उस समय मेरी यह इच्छा थी कि यदि इस भाग का कुछ भी आदर हुआ और हिंदी-प्रेमियों को यह पुस्तक पसंद आई तथा जिस उद्देश से यह लिखी गई है उसमें कुछ भी सफलता देख पड़ी तो समय पाकर मैं इसका दूसरा भाग भी लिखने का उद्योग करूँगा। आज मुझे यह प्रकाशित करते विशेष आनंद होता है कि पहले भाग के प्रथम संस्करण की सब प्रतियाँ बिक गई हैं और अब उसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। यही अवस्था इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यह पुस्तक हिंदी-प्रेमियों को पसंद आई है और उन्होंने इसका उपयुक्त प्रयोग किया है तथा उन्हें इस भाग में सन्निवेशित चरितनायकों का परिचय पाने में सुगमता हुई है, साथ ही उनमें सहानुभूति और प्रेमभाव का प्रसार हुआ है। सारांश यह कि यह पुस्तक सब प्रकार से अपने उद्देश-साधन में सफल हुई है, यहाँ तक कि अनेक समाचारपत्रों में समय समय पर इससे काम लिया गया है, यद्यपि उनमें से कुछ ने इस बात को स्वीकार करने की कृपा दिखाई है और बाकी ने ऐसा करना अनुचित समझ अपने उदार हृदय का परिचय दिया है। अस्तु, इन बातों से उत्साहित हो गत वर्ष मैंने इस पुस्तक के दूसरे भाग के लिखने का संकल्प किया और मैं शीघ्र ही सामग्री एकत्रित करने में तत्पर हुआ।

अनेक महानुभावों ने तो शीघ्र ही मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे बाधित किया। कुछ लोगों ने कोरा जवाब दिया, कुछ मौन साध बैठे और अनेक बेर लिखने पर भी उनकी उपेक्षारूपी निद्रा न टूटी। इस विषय पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। सारांश यही है कि इस पुस्तक की सामग्री के संग्रह करने में मुझे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। साथ ही अनेक महीनों तक विशेष रुग्ण रहने के कारण मेरी ओर से भी इस कार्य में बहुत कुछ ढिलाई हुई। जब से मैंने होश सँभाला है मैं इतना बीमार कभी नहीं पड़ा था। यह बीमारी यहाँ तक बढ़ी थी कि एक समय मैं जीवन से निराश हो सब विचारों और कल्पनाओं को तिलांजलि दे बैठा था। पर उस करुणावरुणालय की असीम अनुकंपा से मैं अब तक जीवित हूँ और बहुत कुछ स्वास्थ्य लाभ कर चुका हूँ। स्वास्थ्य ठीक होने पर फिर मैंने इस पुस्तक के संकलन में हाथ लगाया और आज यह पुस्तक प्रस्तुत होकर उपस्थित है।

पहले भाग की भाँति इस भाग में भी ४० जीवनियाँ और ४० चित्र हैं जो चरितनायकों के चरित तथा चित्र अवस्थाक्रम से इस ग्रंथ में दिए गए हैं। भेद इतना ही है कि इसमें सब चरित जीवित व्यक्तियों के हैं तथा तीन महिलाओं के चित्र और चरित भी इस बेर इसमें सम्मिलित हैं। यह बात हिंदी के लिए गौरव की है कि महिलागण भी हिंदी भाषा की सेवा में तत्पर हैं।

इस पुस्तक के संबंध में एक निवेदन करना आवश्यक है। कोई कोई महानुभाव पुस्तक पर सम्मति प्रकट करते हुए यह आक्षेप करते हैं कि इसमें अमुक अमुक महाशय का उल्लेख छूट गया है जो रहना आवश्यक तथा उचित था। यद्यपि इस संबंध में मतभेद हो सकता है पर उस पर विचार न करके मेरा निवेदन यही है कि ऐसा कहना

पुस्तक के उद्देश में बाधा डालना और उसे एक प्रकार से नष्ट करना है। इस पुस्तक का उद्देश हिंदीसेवकों का संक्षिप्त परिचय देकर परस्पर सहानुभूति और प्रेम उत्पन्न करना है और समालोचकों के कथन का परिणाम वैमनस्य और ईर्ष्या द्वेष का बीजारोपण करना है। यही कारण है कि मैं इस बात को नहीं लिखता कि किन किन महानुभावों के चित्र और चरित प्राप्त करने का मैंने उद्योग किया और किनसे किस प्रकार के उत्तर मुझे मिले तथा अंत में क्या परिणाम हुआ। अतएव सब महाशयों से मेरी सविनय यही प्रार्थना है कि जहाँ तक हो सके इस पुस्तक पर विचार करते हुए इस बात का ध्यान रक्खें कि यह किस उद्देश से लिखी गई है और उनके किस कथन का क्या फल हो सकता है।

अंत में मैं उन महाशयों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की सामग्री के संग्रह करने तथा उसके प्रस्तुत करने में मेरी सहायता की। इसके लिये विशेष धन्यवाद के पात्र जबलपुर के पंडित नर्मदाप्रसाद मिश्र हैं, जिन्होंने मध्यप्रदेश के कई महानुभावों के चित्र और चरित भेज कर मेरी सहायता की। दूसरे महाशय जिन्हें मैं धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता बाबू रामचंद्र वर्म्मा हैं जिनसे पुस्तक के प्रस्तुत करने में मुझे अमूल्य सहायता प्राप्त हुई।

लखनऊ,
७ अक्तूबर १९१३

श्यामसुंदरदास।

चरितनायकों की नामावली।

(१) मुंशी देवीप्रसाद।
(२) बाबू शारदाचरण मित्र, एम० ए०, बी० एल०।
(३) रेवरेंड एडविन ग्रीव्स।
(४) पंडित विनायकराव।
(५) महात्मा मुंशीरामजी।
(६) पंडित चंद्रशेखरधर मिश्र।
(७) पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा।
(८) बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु)।
(९) पंडित गोविंदनारायण मिश्र।
(१०) पंडित रामशंकर व्यास।
(११) बाबू शिवनंदनसहाय।
(१२) पंडित युगलकिशोर मिश्र "ब्रजराज"।
(१३) रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ एम० ए०।
(१४) मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(१५) पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।
(१६) पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०।
(१७) बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री।
(१८) लाला भगवानदीन।
(१९) बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर)।
(२०) बाबू गोपालराम।
(२१) कुँवर हनुमंतसिंह रघुवंशी।

(२२) श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरी।
(२३) पंडित राजाराम वासिष्ठ।
(२४) पंडित महेंदुलाल गर्ग।
(२५) पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।
(२६) पंडित माधवराव सप्रे बी० ए०।
(२७) पंडित सकलनारायण पांडेय, काव्य-व्याकरण-तीर्थ।
(२८) बाबू व्रजनंदनसहाय बी० ए०।
(२९) पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य।
(३०) पंडित कामताप्रसाद गुरु।
(३१) साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्म्मा एम० ए०।
(३२) ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा।
(३३) पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(३४) बाबू हरिकृष्ण जौहर।
(३५) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, बैरिस्टर-एट-ला।
(३६) पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०।
(३७) पंडित रामचंद्र शुक्ल।
(३८) बाबू गंगाप्रसाद गुप्त।
(३९) श्रीमती हेमंतकुमारी देवी (भट्टाचार्य)
(४०) श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू।

———
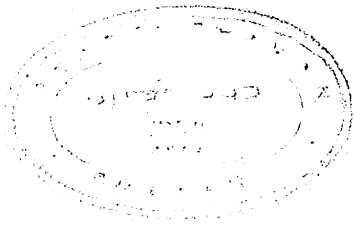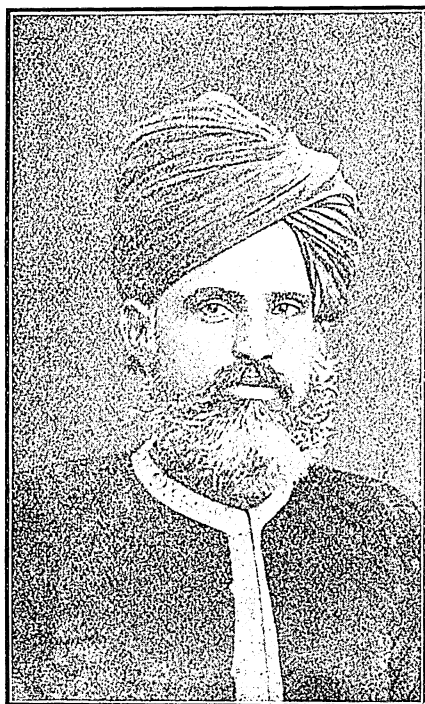
मुंशी देवीप्रसाद ।

हिंदी-कोविद-रत्नमाला ।

दूसरा भाग ।

(१) मुंशी देवीप्रसाद ।

मुंशी देवीप्रसादजी का जन्म माघ शुक्ला १४ शुक्रवार संवत् १९०४ को हुआ था । आपके पिता का नाम मुंशी नत्थनलाल और दादा का नाम मुंशी कृष्णचंद था । आप कायस्थ हैं । यद्यपि अधिकांश कायस्थ हिंदी के विरोधी और उर्दू फ़ारसी के पक्षपाती होते हैं परन्तु सौभाग्यवश आप उन लोगों में नहीं हैं । आपके पूर्वज मुसलमानी राज्यों से संबंध रखने के कारण फ़ारसी-सेवी थे । आपके दादा नवाब अमीरख़ाँ के साथ टोंक में रहते थे । उसी समय आपके पिता नवाब के एक बेटे के साथ मुंशी होकर अजमेर गए थे । रईस की मृत्यु के बाद वे ख़्वाजा साहब की दरगाह के नायब नियत हुए । उन्हें दोनों स्थानों में ही उर्दू और फ़ारसी का काम पड़ता था । मुंशी जी की बाल्यावस्था में उनकी परदादी, दादा, दादी, पिता और माता पाँचों ही वर्तमान थे । परंतु इनमें से केवल इनके पिता और माता ही को हिंदी का कुछ कुछ अभ्यास था । शेष लोग केवल उर्दू और फ़ारसी ही जानते थे । इन्होंने अपने पिता से उर्दू और फ़ारसी तथा अपनी माता से साधारण हिंदी सीखी । १९

वर्ष की अवस्था में अरबी और फ़ारसी का थोड़ा बहुत अभ्यास कर चुकने पर पिताजी ने इन्हें हिंदी के भी दो ग्रंथ पढ़ाए। उसी समय संवत् १९२० में ये रियासत टोंक में, और तदुपरांत अजमेर में नौकर हो गए, जहाँ ये संवत् १९३५ तक रहे। इन दोनों स्थानों में आपको केवल उर्दू और फ़ारसी ही का काम करना पड़ता था। इसके पीछे संवत् १९३६ से आप जोधपुर में नौकर हो गए।

जिस समय आप टोंक में नौकर थे। उस समय आपने उर्दू में "ख़्वाब राजस्थान" नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसका "स्वप्न राजस्थान" नामक हिंदी अनुवाद भी आपने कर डाला है। इस पुस्तक के उर्दू संस्करण में प्रसंगवश प्रजाहित के विचार से आपने हिंदी-दफ़्तरों की आवश्यकता बतलाई थी, जिसके कारण आपको अपने कई सजातीय मित्रों के ताने सहने पड़े थे। जिस समय आप जोधपुर में नौकर हुए उस समय वहाँ की अदालतों का काम उर्दू में और माल, ख़ज़ाना, फ़ौज और बाहर की कचहरियों का काम हिंदी में होता था। उस समय महाराजाधिराज करनल सर प्रतापसिंह जी० सी० एस० आई० जोधपुर के प्रधान मंत्री और अपील-आला के चीफ़ जज थे। उन्हीं के दफ़्तर में आपको हिंदी काग़ज़ों का उर्दू अनुवाद करके उन्हें आज्ञा के लिये प्रधान मंत्री के सामने उपस्थित करने का काम मिला था। यद्यपि महाराज प्रतापसिंह हिंदी के पक्षपाती थे और अपने दफ़्तर हिंदी में करना चाहते थे किंतु महाराज जसवंत-सिंह के पास मुसलमानों का जमघट अधिक था, इसलिये दफ़्तर पूर्व-वत् उर्दू में ही रहे। धीरे धीरे ४—५ वर्ष पीछे हिंदी को भी वहाँ स्थान मिलने लगा और फ़ैसले आदि हिंदी में लिखे जाने लगे, यहाँ तक एक दिन रात को अर्ज़ियाँ सुनते समय उर्दू की ५०—६० अर्ज़ियाँ महाराज प्रतापसिंह ने मुंशी देवीप्रसाद से फड़वा डालीं। उस दिन से

वहाँ के सब काम हिंदी में होने लगे। जब उर्दू का स्थान हिंदी को मिला तो एक बेर फिर मुंशी जी के मित्रों ने उन पर अनेक प्रकार के आक्षेप किए और सब फ़सादों की जड़ इन्हीं को बतलाया।

हिंदी का आपको पहले ही से अभ्यास था, यहाँ उसका काम और भी बढ़ गया और उसके कारण आपकी प्रतिष्ठा और उन्नति भी हुई। इसके पीछे एक गुजराती सज्जन होम सेक्रेटरी हुए जिन्होंने हिंदी न जानने और मुंशी जी के विश्वसनीय और परिश्रमी होने के कारण अपने अधिकांश कार्यों का भार आप पर ही छोड़ दिया। कुछ दिनों पीछे कविराज मुरारीदान अपील-आला के निरीक्षक हुए। दोनों सज्जनों के हिंदी-प्रेमी होने के कारण कुछ समय तक इन लोगों में परस्पर अच्छी बनी। संवत् १९४० में जब मुंशी हरदयालसिंह जी प्रधान मंत्री के सेक्रेटरी हुए तो आप उनकी सहायता के लिये नियुक्त किए गए। मुंशी हरदयालसिंह जी ने राज्य में बहुत से सुधार किए थे, नये नियमादि बनाए थे, मनुष्यगणना की थी तथा अन्य उपयोगी कार्य्य बहुत योग्यता से किए थे। उन सबमें मुंशी देवीप्रसादजी ने बहुत अधिक सहायता दी थी, जिसके लिये वहाँ के उच्च अधिकारियों ने आपकी बहुत अधिक प्रशंसा की थी। मनुष्यगणना का काम योग्यतापूर्वक करने के कारण आपको ५००) पारितोषिक और एक प्रशंसापत्र भी मिला था। उसी समय १००) मासिक पर आप मुंसिफ़ बना दिए गए और आपको ५००) तक के दीवानी मुक़द्दमों के सुनने का अधिकार दिया गया। इस काम को भी आपने बहुत योग्यतापूर्वक संपादन करके उच्च अधिकारियों को बहुत प्रसन्न किया। आज कल आप महकमे तवारीख़ के मेम्बर हैं और आर्कियालोजिकल विभाग का कुछ काम करते हैं।

मुंशी देवीप्रसाद प्राचीन इतिहास के बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। इन्होंने

इस विषय पर हिंदी और उर्दू में प्राय: ५०—६० ग्रंथ लिखे हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के समझे जाते हैं। आपकी लिखी हिंदी-पुस्तकों में से अकबरनामा, जहाँगीरनामा, शाहजहाँनामा, औरंगज़ेबनामा, बाबरनामा, हुमायूँनामा, ख़ानख़ानानामा तथा राजपूताने के बहुत से वीर महाराजाओं के जीवनचरित बहुत प्रसिद्ध हैं। पहले पहल सन् १८७५ में आपने मारवाड़ का जो इतिहास लिखा था उसके लिए पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान संयुक्तप्रांत) की सरकार ने आपको ३००) पारितोषिक दिया था। इसके अतिरिक्त नीति और स्त्री-शिक्षा-संबंधी कई पुस्तकों के लिये आपको और भी कई पुरस्कार तथा प्रशंसापत्र आदि मिल चुके हैं। आज कल आपका अधिकांश समय हिंदी-पुस्तकों के पढ़ने या लिखने में ही जाता है। अभी थोड़े दिन हुए आपके इकलौते जवान लड़के पीतांबरप्रसाद का देहांत हो गया है जिसके कारण आप बहुत दु:खी रहते हैं। पीतांबरप्रसाद हिंदी के होनहार कवि और लेखक थे। इसके अतिरिक्त वह उर्दू और कभी कभी फ़ारसी की भी कविता करते थे। उनकी लिखी कई पुस्तकें उर्दू में छप भी चुकी हैं।

---

(२) बाबू शारदाचरण मित्र एम० ए०, बी० एल०।

बाबू शारदाचरण मित्र कलकत्ते के एक प्रसिद्ध जजों और वकीलों के कुल में १७ दिसंबर सन् १८४८ को उत्पन्न हुए हैं। आप कायस्थ हैं और कलकत्ते के एक प्रसिद्ध व्यवसायी के पुत्र हैं। इनकी माता इन्हें छः वर्ष का छोड़ कर स्वर्ग सिधारी थीं। जिस समय ये मिडिल क्लास में पहुँचे उस समय इनके पिता का भी देहांत हो गया। सन् १८७० में आपने, बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। एफ़० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं में ये प्रथम हुए थे। बी० ए० की परीक्षा देने के एक महीने पीछे ही आपने दूसरी परीक्षा देकर एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। आपसे पूर्व और किसी ने इतनी जल्दी जल्दी डिग्रियाँ प्राप्त नहीं की थीं। इसी बीच में आपने कई प्रसिद्ध और बड़ी बड़ी छात्रवृत्तियाँ भी प्राप्त की थीं। आप २१ वर्ष की अवस्था में ही कलकत्ता प्रेसिडेंसी कालेज में अँगरेज़ी के लेकचरर नियुक्त हुए थे। शिक्षक होकर आपने अपनी प्रतिभा और छात्रों पर उत्तम प्रभाव डालने की योग्यता का बहुत अच्छा परिचय दिया था। सन् १८७० में बी० एल० परीक्षा पास करके आप हाई-कोर्ट के वकील बन गए। वकालत के साथ ही साथ आप "हवड़ा हितकारी" तथा अन्य कई पत्रों का सम्पादन भी करते थे। सन् १८७८ से ८० तक आप कलकत्ता म्युनिसिपेलिटी के म्युनिसिपल कमिश्नर और ८४ से १९०० तक बंगाल की टेक्स्टबुक कमेटी के मेंबर रहे। सन् १८८५ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के आप फेलो हो

गए। तथा १६०१ से १६०४ तक आप फ़ैकलटी आफ़ ला के सभापति रहे। वकालत में आपने बहुत अच्छा नाम पैदा किया। मुक़दमों को आप बहुत अच्छी तरह और जल्दी समझ लेते थे और अदालत के सामने उन्हें बहुत ख़ूबी से पेश करते थे। आपकी योग्यता पर आपके सहयोगी मुग्ध रहा करते थे इसलिये शीघ्र ही आपकी गणना औवल दरजे के वकीलों में होने लग गई, यहाँ तक कि फ़रवरी १८६२ में आप कलकत्ता हाईकोर्ट के जज नियुक्त हो गए। बुद्धगया वाले प्रसिद्ध झगड़े में आप सरकार की ओर से जाँच के लिये भेज़े गए थे। इस संबंध में आपने अपनी जो रिपोर्ट पेश की थी उससे आपकी विद्वत्ता और योग्यता का और सबसे बढ़ कर आपकी पक्षपातशून्यता का बहुत अच्छा पता लगता है। मुक़दमों का वास्तविक रूप समझने और उन पर स्वतंत्र विचार देने के लिये आप सदा प्रसिद्ध रहे। आप समाज-सुधारक और स्त्री-शिक्षा के कट्टर पक्षपाती हैं।

देवनागरी लिपि के आप बड़े पक्षपाती हैं। आप चाहते हैं कि समस्त भारतवर्ष में उसी का प्रचार हो। इसी उद्देश्य से "एक-लिपि-विस्तार परिषद्" नामक जो सभा स्थापित हुई थी उसके आप सभापति हैं। उक्त परिषद् द्वारा आपने "देवनागर" नामक एक मासिक पत्र निकलवाया था जिसमें भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं के लेख देवनागरी लिपि में निकला करते थे। यह मासिक पत्र अब बंद हो गया है।

मित्र महाशय इस समय अपना समय देश-हितकर कार्यों में लगाते हैं। आपका स्वभाव नम्र और सरल है।*

---

* खेद है कि अब आप इस संसार में नहीं हैं।
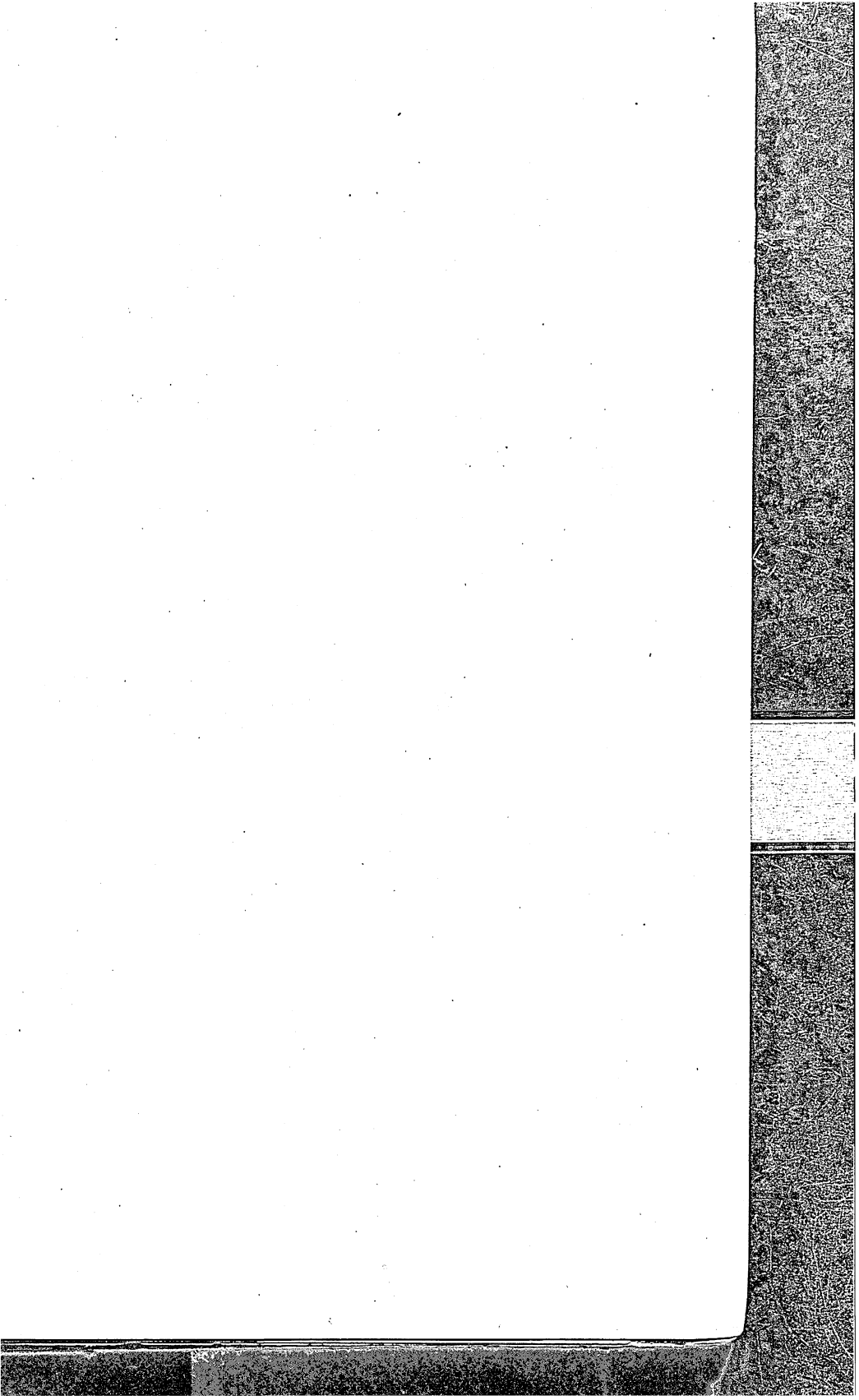
रेवरेंड एडविन ग्रीव्स ।

(३) रेवरेंड एडविन ग्रीव्स ।

रेवरेंड एडविन ग्रीव्स की गणना उन कई यूरोपियन सज्जनों में की जाती है जिन्होंने भारत में रह कर यहाँ की देशभाषा हिंदी की अनेक प्रकार से सहायता करके उसका बहुत कुछ वास्तविक उपकार किया है।

ग्रीव्स साहब का जन्म ५ दिसम्बर १८५४ को लंदन में हुआ था। छोटी ही अवस्था में इन्हें स्कूल छोड़ कर व्यापार में योग देना पड़ा था। परंतु २० वर्ष की अवस्था तक पहुँचने पर इनकी प्रवृत्ति धार्मिक विषयों की ओर हुई और यह प्रवृत्ति यहाँ तक प्रबल हुई कि इन्होंने उसी समय मिशनरी होने का दृढ़ विचार कर लिया। यद्यपि इनकी इच्छा इँगलैंड छोड़ने की नहीं थी तो भी ईश्वर ने ऐसे संयोग लगा दिए जिनसे इन्हें विवश होकर धार्म्मिक कार्यों के लिये विदेश जाना पड़ा।

मिशन का कार्य करने की इच्छा से सन् १८७७ में २३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने फिर कालेज में प्रवेश किया और लगभग छः वर्ष तक लंदन और प्लिमथ में शिक्षा प्राप्त की। इसके पीछे लंदन की मिशनरी सोसायटी में मिशन के कार्य के लिये आप नियुक्त हो गए और सन् १८८१ में भारत आए। तब से सन् १८९२ तक ये मिर्ज़ापुर में रहे। इसके पीछे ये छुट्टी लेकर विलायत चले गए। वहाँ से लौटने

पर प्रायः दो वर्ष तक ये बनारस ज़िले में भ्रमण करते रहे। इसके पीछे स्थिर रूप से ये बनारस में ही रहने लगे।

इधर कई वर्षों में इन्होंने हिंदी और अँगरेज़ी में कई पुस्तकें लिखी हैं। साथ ही ये भारत तथा इँगलैंड की बहुत सी मासिक पत्रिकाओं के लिये प्रायः लेखादि लिखा करते हैं। अँगरेज़ी में आपने "काशी" नगर के वर्णन में एक पुस्तक लिखी है, हिंदी का एक व्याकरण बनाया है और तुलसीकृत रामायण के व्याकरण के संबंध में कुछ नोट्स लिखे हैं। हिंदी में भी इनकी लिखी पाँच पुस्तकें हैं जो सबकी सब ईसाई-धर्म-संबंधिनी हैं। उनमें से दो पुस्तकों के कई संस्करण हो चुके हैं।

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा से इन्हें बहुत अधिक प्रेम है। ये उसके सभासद हैं और अनेक प्रकार से उसके कामों में अच्छी सहायता दिया करते हैं। अनेक बेर इन्होंने सभा की वह सेवा की है जो दूसरों से होनी कठिन है। सभाभवन के लिये ज़मीन प्राप्त करना, सभा द्वारा सम्पादित रामायण के लिये चित्रों का लेना तथा ऐसे ही अनेक कार्य इस गणना में आ सकते हैं। इन्होंने एक बेर माडर्न रिव्यू नामक अँगरेज़ी मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया था जिसमें इन्होंने अँगरेज़ी पढ़नेवालों को सभा का परिचय दिलाते हुए सभा के इतिहास और उसके कार्यों का दिग्दर्शन कराया था।

आपने नागरीप्रचारिणी पत्रिका में तुलसीदास का जीवनचरित हिंदी में लिखा है जिससे इनकी हिंदी की योग्यता का परिचय मिलता है।

आप बड़े मिलनसार तथा नम्र स्वभाव के हैं। हिंदी भाषा पर आपका बड़ा प्रेम है और सदा उसकी सहायता पर उद्यत रहते हैं।

पंडित विनायकराव ।

(४) पंडित विनायकराव ।

पंडित विनायकराव का जन्म संवत् १९१२ की पौष शुक्ला १० को (सन् १८५५ ई०) सागर ज़िले में हुआ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं। बचपन ही में इनके पिता इन्हें छोड़ कर स्वर्ग सिधारे थे। जन्मस्थान में ही इनका विद्यारम्भ हुआ। सागर के हाई स्कूल से इन्होंने एंट्रेंस पास किया। इसके पीछे सागर के हाई स्कूल के जबलपुर उठ आने पर ये भी उसके साथ वहीं चले आए और सन् १८७५ में ये एफ़० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसके अनंतर बी० ए० पढ़ने के लिये इन्हें सरकार से १५) मासिक की छात्रवृत्ति मिली। उस समय मध्यप्रदेश में कहीं बी० ए० की पढ़ाई नहीं होती थी, उसके लिये लखनऊ जाना पड़ता था। कई कारणों से ये लखनऊ न जा सके और इनकी शिक्षा यहीं समाप्त हो गई।

सन् १८८६ के मई मास में ये मुरवाड़ा के मिडिल स्कूल में २५) मासिक पर प्रथम अध्यापक नियत हुए। कुछ दिनों पीछे ये सागर के हाई स्कूल में सहकारी अध्यापक होकर चले गए और तीन ही मास पीछे ५०) पर हेड मास्टर होकर फिर मुरवाड़ा लौट आए। कोई डेढ़ वर्ष वहाँ रह कर ६०) पर जबलपुर के नार्मल स्कूल में चले गए। कुछ समय पीछे १००) मासिक पर ये हुशंगाबाद हाई स्कूल के हेड मास्टर हो गए। इनकी पढ़ाई का फल यहाँ तक अच्छा होता था कि इनके पढ़ाए प्रायः सभी छात्र पास हो जाया करते थे।

इससे उस प्रांत में पंडितजी की बहुत प्रसिद्धि हुई। एक बेर चीफ़ कमिश्नर ने तार द्वारा इन पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी। कुछ काल उपरांत १५०) वेतन पर ये जबलपुर के नार्मल स्कूल के सुपरेंटेंडेंट नियत हुए, जहाँ ये पाँच वर्ष तक रहे। फिर ये नागपुर के ट्रेनिंग इंस्टीट्यूशन में बदल दिए गए, जहाँ इन्हें २२०) मासिक मिलते रहे। वहाँ इन्होंने कई बी० ए० पास लोगों को पढ़ाया और उन्हें पास कराया। इसके पीछे ट्रेनिंग इंस्टीट्यूशन नागपुर से उठ कर जबलपुर आया और ये भी उसी के साथ जबलपुर आए। इस प्रकार ३४ वर्ष तक इन्होंने शिक्षा-विभाग में बड़ी योग्यता से काम किया और अच्छा नाम पाया। इनकी योग्यता का पता चीफ़ कमिश्नर की वार्षिक रिपोर्ट तथा अन्य अँगरेज़ अफ़सरों के दिए हुए सार्टिफ़िकेटों से मिलता है। आज कल ये सरकारी पेंशन पाते हैं और सकुटुंब जबलपुर में रहते हैं। मुरवाड़ा ज़िला स्कूल की हेड मास्टरी के समय इन्होंने वहाँ एक संस्कृत-पाठशाला खोली थी जो अभी तक जारी है और भली भाँति अपना काम कर रही है।

पंडितजी हिंदी भाषा के बड़े प्रेमी हैं। इन्होंने अब तक लगभग २० पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कई मध्यप्रदेश के स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। कई पुस्तकों के लिये शिक्षा-विभाग से इन्हें पारितोषिक भी मिला है। पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकों के लिये इन्हें १०००) का पारितोषिक मिला था। इनकी कई पुस्तकों की दस दस आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। आज कल ये रामायण की टीका कर रहे हैं। केवल लंका-कांड की टीका बाक़ी है। इसी प्रकार ये और भी कई काव्यों पर टीका किया चाहते हैं। वैज्ञानिक कोश के सम्पादन के समय जब काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने मध्यप्रदेश के शिक्षा-विभाग के इंस्पेक्टर-जनरल (जो आज कल डाइरेक्टर कहलाते हैं) से एक

प्रतिनिधि भेजने की प्रार्थना की थी तो उन्होंने पंड़ितजी को ही प्रतिनिधि बना कर भेजा था। इस कार्य में इन्होंने अच्छी सहायता दी थी। उसी समय से नागरीप्रचारिणी सभा के ये स्थायी सभासद हो गए। जबलपुर के श्रीभानुकविसमाज ने २२ जनवरी सन् १६०४ को एक अधिवेशन करके इन्हें "नायक" कवि की उपाधि से सम्मानित किया है।

अँगरेज़ी तथा हिंदी के अतिरिक्त ये संस्कृत, उर्दू और मराठी भाषाएँ भी भली भाँति जानते हैं। ये बहुत मिलनसार और विनोदप्रिय हैं। इनका अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने में ही बीतता है। इस समय नेत्रों के निर्बल हो जाने पर भी ये सदा साहित्य-सेवा में लगे रहते हैं।

आपके तीन पुत्र तथा तीन कन्याएँ हैं। ज्येष्ठ पुत्र पंडित परशुराम बी० ए० हरदा में स्कूलों के डिपटी इंस्पेक्टर हैं।

---

(५) महात्मा मुंशीराम जी।

जिन्होंने पवित्र भागीरथी के तट पर हरिद्वार के सम्मुख काँगड़ी ग्राम में स्थापित गुरुकुल को देखा या उसका वृत्तांत पढ़ा है उन्हें महात्मा मुंशीराम का विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी-समाचार-पत्रों के पढ़नेवालों से सद्धर्म्मप्रचारक का नाम भी छिपा नहीं है। आपही उसके संस्थापक और सम्पादक हैं। आपका जन्म संवत् १९१५ में जलंधर ज़िले के तलवन ग्राम में हुआ था। आपके पिता उस समय पीलीभीत में रिसालदार मेजर थे। आपकी शिक्षा बरेली, बनारस आदि स्थानों में हुई। पहिले आपके पिता का विचार आपको सरकारी नौकरी में डालने का था पर उस ओर आपकी रुचि नहीं थी। सन् १८८७ के आरंभ में आपने लाहौर में वकालत की परीक्षा पास की और जलंधर में वकालत करना प्रारंभ किया। इस समय के पूर्व ही से आपके हृदय में आर्यसमाज की सेवा की धुन समा चुकी थी। यहाँ आकर आपने वकालत के साथ ही साथ आर्यसमाज के प्रचार का काम भी आरंभ किया। कई वर्षों तक आप वहाँ के आर्यसमाज के प्रधान रहे। धीरे धीरे आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी और आप आर्यसमाज के एक बड़े दल के नेताओं मे गिने जाने लगे। इसी अवसर में आप कई बेर पंजाब की आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान भी रहे। सन् १८८९ के अप्रैल मास में आपने अपने सम्पादकत्व में उर्दू का एक साप्ताहिक पत्र निकाला।

महात्मा मुंशीरामजी ।
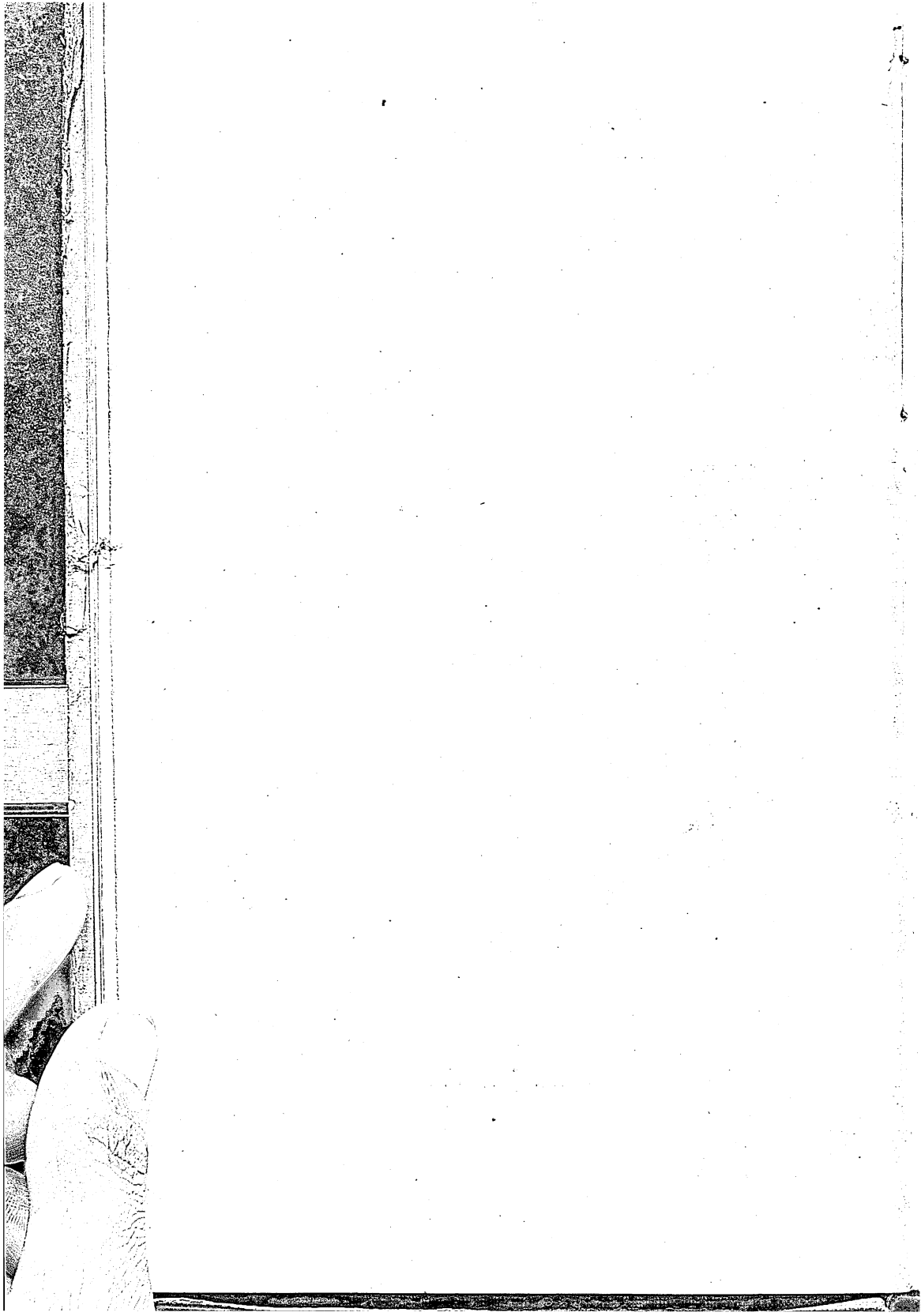
यह सद्धर्मप्रचारक के नाम से प्रतिष्ठित हुआ। आर्यसमाज के एक बड़े भाग का यह पहिला पत्र था। लगभग २३ वर्षों तक यह पत्र आपके हाथ में रहा। फिर यह गुरुकुल काँगड़ी का मुखपत्र हो गया। आर्य-समाजियों में यह पत्र बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और इसके लेखों का बहुत कुछ प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है। जब सद्धर्म-प्रचारक उर्दू में रहा थे उसमें प्राय: हिंदी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में लेख लिखते रहे और अपनी उर्दू में हिंदी के अधिकांश शब्दों का प्रयोग करते रहे। इस शैली का प्रभाव पंजाब के उर्दू पत्रों पर यहाँ तक पड़ा है कि अब उनकी भाषा हिंदी मिश्रित उर्दू कही जा सकती है।

सन् १९०८ ई० से यह पत्र हिंदी में निकलने लगा। इस परिव-र्तन का प्रभाव प्रचारक की आर्थिक अवस्था पर बहुत बुरा पड़ा, क्योंकि पंजाब में उस समय हिंदी की चलन बहुत कम थी। परंतु यह कहना अनुचित न होगा कि सैकड़ों पंजाबियों ने प्रचारक के कारण देवनागरी अक्षरों का अभ्यास किया। सच तो यह है कि सद्धर्मप्रचा-रक के कारण पंजाब में हिंदी का बहुत कुछ प्रचार हुआ है। इस समय यह पत्र हिंदी के प्रतिष्ठित पत्रों में गिना जाता है। सन् १९०० ई० में महर्षि दयानंद सरस्वती के वाक्यों को पढ़कर आपने गुरुकुल स्थापित करने का विचार किया। विचार दृढ़ होने पर इन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिये तीस हज़ार रुपए इकट्ठे न कर लूँगा घर में पैर न रक्खूँगा। बस फिर क्या था आप घर से निकल पड़े और जगह जगह घूम घूम कर सात महीने के निरंतर उद्योग के अनंतर तीस हज़ार रुपये लेकर घर लौटे। अब क्या था, गुरुकुल स्थापित होगया और आप ही उसके मुख्याधिष्ठाता नियत हुए। अन्य सब काम काज से एक प्रकार अलग हो आप इस विद्यालय के उद्योग में लग गए। विद्यालय ने भी ऐसी उन्नति की है कि इस समय

उसकी समता का ऐसा दूसरा विद्यालय भारतवर्ष में नहीं है। एक प्रकार से यह पूर्ण रूप से एक संगठित विश्वविद्यालय हो रहा है। इसमें विशेषता यह है कि यहाँ उच्च से उच्च शिक्षा हिंदीभाषा द्वारा दी जाती है। क्या विज्ञान और क्या सम्पत्तिशास्त्र अथवा अन्य शास्त्रीय गहन विषय सबका पठन पाठन यहाँ हिंदी ही में होता है। जो लोग कहते हैं कि हिंदी द्वारा उच्च शास्त्रीय विषयों की शिक्षा नहीं दी जा सकती उनका मुँहतोड़ जवाब इसी गुरुकुल विद्यालय ने दिया है। हमारे यहाँ के सरकारी विश्वविद्यालय देशभाषाओं को उच्च शिक्षा प्रणाली में स्थान देने के लिये अभी तक आनाकानी कर रहे हैं पर महात्मा मुंशीरामजी धन्य हैं कि जिन्होंने अपनी मातृभाषा का इतना गौरव बढ़ाया है।

इन बड़े कामों के अतिरिक्त महात्मा जी देशसेवा के अनेक कार्यों में सदा दत्तचित्त रहते हैं। इन्होंने पार्वतीय जातियों की उन्नति के संबंध में एक लेखमाला लिखी है और नेपोलियन बोनापार्ट का एक अच्छा जीवनचरित्र हिंदी में लिखा है। गुरुकुल विद्यालय के वार्षिकोत्सव के समय एक आर्यभाषासम्मेलन भी होता है जिसमें हिंदी भाषा तथा देवनागरी अक्षरों की वृद्धि तथा उन्नति के प्रश्नों पर विचार किया जाता है। महात्मा जी की अनेक सेवाओं पर ध्यान करके भागलपुर-निवासियों ने इन्हें चतुर्थ हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाया था।

महात्मा मुंशीराम जी बड़े उद्योगी, परिश्रमी, दृढ़प्रतिज्ञ और अपने सिद्धांतों पर अटल रहनेवाले हैं। संयुक्त प्रदेश के छोटे लाट सर जेम्स मेस्टन ने मथुरा में इनके विषय में (१६१३ में) कहा था "इस मनुष्य के साथ एक क्षण भर बात करने से ही मनुष्य को उसके हृदय की सचाई और आदर्श की उच्चता ज्ञात हो जाती है। शोक है कि हम सब मुंशीराम नहीं हो सकते।"

पंडित चंद्रशेखरधर मिश्र ।   [युवावस्था

(६) पंडित चंद्रशेखरधर मिश्र ।

भारतवर्ष का सरयूपार या सरवार प्रदेश बहुत प्राचीन काल से विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध है। प्रायः २४०० वर्ष पूर्व महर्षि मयूर मिश्र का जन्म वहीं हुआ था। इन्हीं मयूर मिश्र ने स्वामी शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। मिश्रजी ने तीन विवाह किये थे—पहिला ब्राह्मण-कन्या के साथ, दूसरा क्षत्रिय-कन्या के साथ, और तीसरा भूमिहार-कन्या के साथ। ब्राह्मणकन्या से जो पुत्र हुआ था उसकी ९० वीं पीढ़ी में पंडित धरणीधर मिश्र हुए थे, जिन्होंने चंपारन को अपना निवास-स्थान बनाया था। पं० धरणीधर को तनहू के राजा की ओर से राजान रत्नमाला आदि कई गाँव मिले थे। पंडित चंद्रशेखरधर मिश्र उन्हीं के वंशज हैं और चंपारन ज़िले के उसी रत्नमाला नामक गाँव में रहते हैं।

पंडित जी का जन्म पूस वदी २ संबत् १९१५ में हुआ था। इनके पिता पंडित कमलाधर मिश्र संस्कृत के अच्छे पंडित और कवि थे; तथा गान विद्या में भी उन्हें अच्छी निपुणता प्राप्त थी। पंडित कमलाधर का अधिकांश समय पूजा पाठ आदि में ही बीतता था, इसलिये १०–१२ वर्ष की अवस्था में ही बालक चंद्रशेखरधर मिश्र पर गृहस्थी का बहुत सा भार आ पड़ा। उस समय इन लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी, इसलिये पंडित चंद्रशेखर की शिक्षा का यथेष्ट प्रबंध न हो सका, परंतु इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी और पढ़ने की ओर रुचि

भी अधिक थी। इसलिये इन्होंने कुछ पंडितों से क्रमशः संस्कृत-व्याकरण, साहित्य, आयुर्वेद तथा ज्योतिष का अध्ययन कर लिया। इसके अनंतर इन्होंने संस्कृत तथा हिंदी-काव्य के भी अनेक ग्रंथ पढ़े और बँगला तथा उर्दू का भी कुछ अभ्यास कर लिया।

इस बीच में इनकी आर्थिक अवस्था में भी उचित परिवर्तन हुआ। संवत् १९३७ में इनका ध्यान देश की अविद्या और कुरीतियों की ओर गया और इन्हें दूर करने के अभिप्राय से इन्होंने चंपारन, गोरखपुर, बस्ती, अयोध्या, काशी, प्रयाग आदि अनेक नगरों में विद्याधर्मवर्द्धिनी सभाएँ स्थापित कीं। इस कार्य में इन्हें अपने संबंधियों, मित्रों, तथा परिचित लोगों के अतिरिक्त भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, मझौली के राजा खड्गबहादुर मल्ल तथा पंडित उमापति शर्म्मा (पंडित नकछेदराम) से भी बहुत सहायता मिली थी। इन सभाओं के साथ पाठशालाएँ भी स्थापित हुई थीं। अब तक इनमें से अनेक सभाएँ वर्तमान हैं। चंपारन में त्रिवेणीकनाल ले जाने का इन्होंने बहुत उद्योग किया। अंत में उस कार्य में इन्हें सफलता प्राप्त हुई। आज कल ये अपने प्रदेश में रेल ले जाने का उद्योग कर रहे हैं।

संवत् १९४० में इनके पिता पं० कमलाधरजी का स्वर्गवास हो गया। तब से इन्हें भी अनेक शारीरिक कष्ट उठाने पड़े। संवत् १९४७ में इनकी दाहिनी जाँघ टूट गई, संवत् १९५१ में इनका बायाँ पैर टूटा और संवत् १९६४ में एक बाँह भी टूटा; पर ईश्वर की दया से थोड़ा बहुत कष्ट भोग कर इन सब आपत्तियों से इनकी निवृत्ति हो गई।

यद्यपि अपने घर और ज़मींदारी के प्रबंध तथा वैद्यक से इन्हें बहुत ही कम अवकाश मिलता है, तो भी ये कुछ न कुछ समय निकाल कर हिंदी की सेवा करते रहते हैं। संवत् १९४४ में इन्होंने विद्याधर्मदीपिका नाम की एक मासिकपत्रिका निकाली थी। इसे ये प्रायः ग़रीबों

को बिना दाम ही बाँटा करते थे। इधर कई वर्षों से इसका प्रकाशित होना बंद हो गया है। कुछ दिनों तक ये चंपारनचंद्रिका नाम की साप्ताहिक पत्रिका का भी सम्पादन करते रहे। संस्कृत में इन्होंने काव्य, नीति, भक्ति और वैद्यकसंबंधी १०, १२ ग्रंथ लिखे हैं। हिंदी पद्य में इन्होंने कोई ३० पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त एक नाटक, चार पाँच उपन्यास, कई जीवनचरित्र और फुटकर विषय के कई छोटे बड़े ग्रंथ लिखे हैं, पर दुःख है कि इनमें से अधिकांश ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। संवत् १९६१ में इनकी पाठशाला तथा पुस्तकालय में आग लग जाने के कारण इनके बहुत से ग्रंथ जल गए थे। इन्हीं के अन्तर्गत कई संस्कृत ग्रंथों की टीकायें भी थीं। मिश्रजी संस्कृत तथा हिंदी के अच्छे विद्वान् तथा आशुकवि हैं। साधारण बातचीत भी ये कविता में कर बैठते हैं, पर उसमें कविता का सुर या लय न होने के कारण उसका पता नहीं चलता। सन् १९०७ में कलकत्ते में एक राजा ने इनके इस गुण की परीक्षा ली थी। उस समय अनेक विद्वानों के सामने इन्होंने एक मिनट में तीन कवितायें की थीं।

आजकल इनका अधिकांश समय आयुर्वेद की उन्नति के उद्योग में जाता है। इन्होंने अपने ख़र्च से एक साधारण पाठशाला, एक वैद्यकसंबंधी पाठशाला और एक औषधालय खोल रक्खा है, जिनका ख़र्च लगभग २५०) रु० मासिक है। इनमें विद्यार्थियों को शिक्षा तथा रोगियों को औषध के अतिरिक्त भोजन और रहने के लिये स्थान भी मिलता है। औषधालय में दूर दूर के रोगी आते हैं, जिनकी संख्या वर्ष में पाँच हज़ार तक पहुँच जाती है। वैद्यक-पाठशाला को ये कालिज बनाने का बहुत उद्योग कर रहे हैं और उसके लिये बड़े बड़े हाकिमों तथा राजाओं से मिलते हैं। प्रसिद्ध कविराज गणनाथ-सेन एम० ए०, एल० एम० एस० ने इनकी योग्यता की बहुत प्रशंसा

की है और (स्व०) पंडित सत्यव्रत सामश्रमीजी ने इन्हें "कवींद्र" की उपाधि दी है।

स्वभाव इनका बहुत ही मिलनसार है। ये बड़े मिष्टभाषी हैं। इनके तीन पुत्र हुए थे, जिनमें से एक का देहांत हो गया। शेष दोनों अभी बालक हैं और विद्याभ्यास करते हैं।

—:o:—
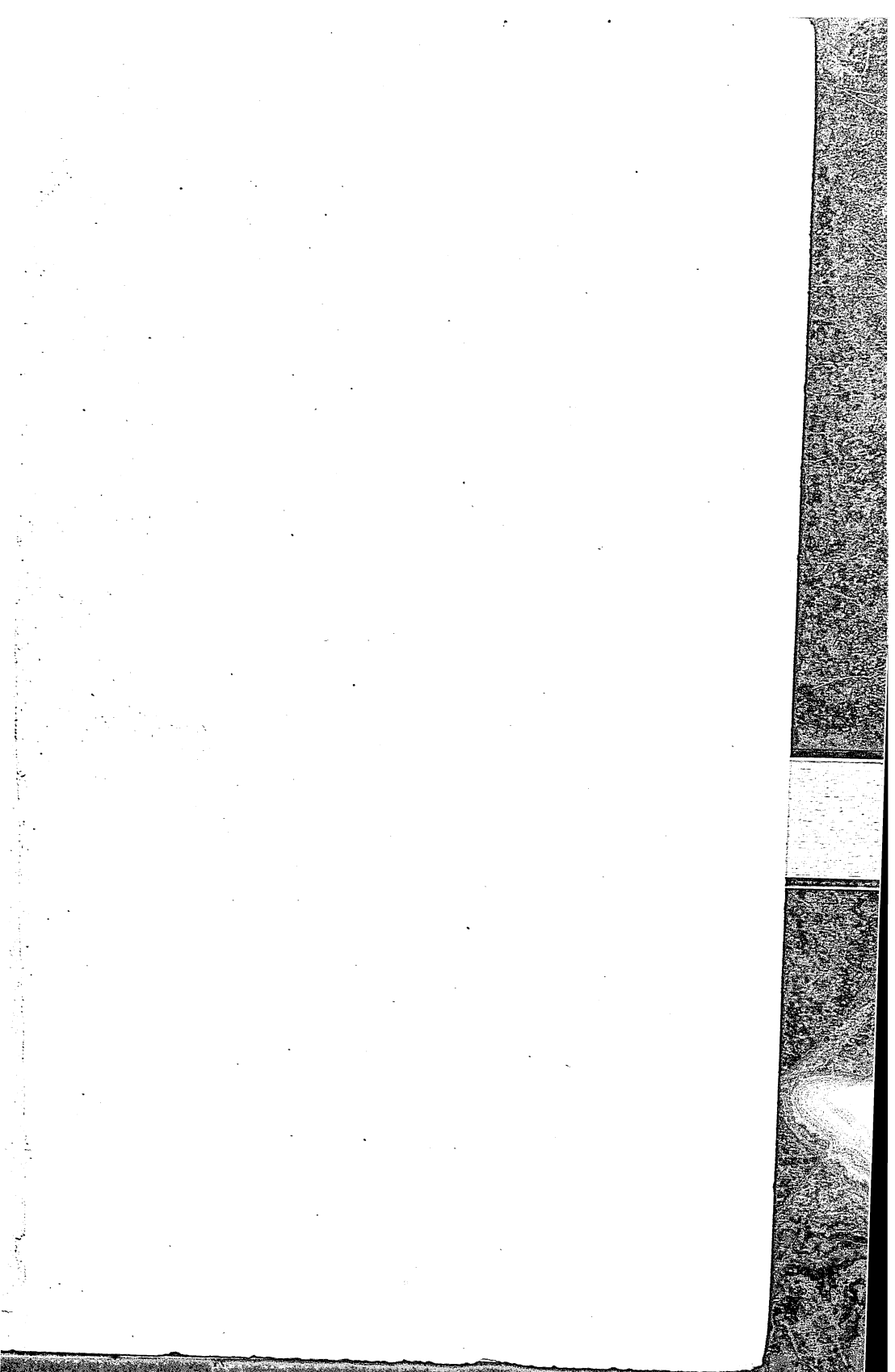
पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा ।

(७) पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा ।

पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा का जन्म संवत् १९१६ चैत्र शुक्ला ५ शुक्रवार को हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित रूपराम शर्म्मा था। ये भारद्वाजगोत्रीय गौड़ ब्राह्मण हैं और इनका निवासस्थान हरदुआगंज, ज़िला अलीगढ़ है। पंडित नाथूरामजी साधारण अँग्रेज़ी और उर्दू जानते हैं तथा हिंदी के अच्छे कवियों में इनकी गणना है। इनकी कविताएँ प्रायः सरस्वती मासिक पत्रिका में प्रकाशित होती रही हैं, जिन्हें खड़ी बोली के प्रेमी बड़े आदर की दृष्टि से पढ़ते हैं। सरस्वती में अब तक जितने कवियों की कविताएँ निकली हैं उनमें से पाँच प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का संग्रह "कविताकलाप" नाम से प्रकाशित किया गया है। इस कवि-पंचक में शर्म्माजी भी सम्मिलित हैं। संवत् १९३७ में पंडित नाथूरामजी कानपुर में नहर विभाग में ड्राफ़्ट्समैन के पद पर नियुक्त हुए थे। यहाँ इन्होंने पाँच वर्ष तक काम किया। अंत में इस्तीफ़ा देकर वहाँ से ये अलग हो गए और तब से अब तक वैद्यक द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। शर्म्माजी खड़ी बोली में अच्छी कविता करते हैं और वे हिंदी के पत्रों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। अनेक बेर इन्हें अनेक स्थानों से समस्यापूर्ति के लिये चाँदी और सोने के पदक तथा पगड़ियाँ, घड़ियाँ, पुस्तकें और प्रशंसापत्र मिले हैं। ज्वालापुर के महाविद्यालय से भी इन्हें एक स्वर्णपदक मिला है। अभी थोड़े दिन हुए इन्होंने एक बँगला उपन्यास का हिंदी में अनुवाद किया है जो बंबई की मनो-

ंजक-ग्रंथ-प्रकाशक मंडली द्वारा प्रकाशित हुआ है। इन्होंने उर्दू में भी कविता की है।

शर्म्माजी आर्यसमाज के सिद्धांतों के दृढ़ अनुयायी हैं। स्वभाव इनका बहुत सरल है। इस समय इनके एक कन्या और चार पुत्र हैं तथा एक पौत्र भी है।
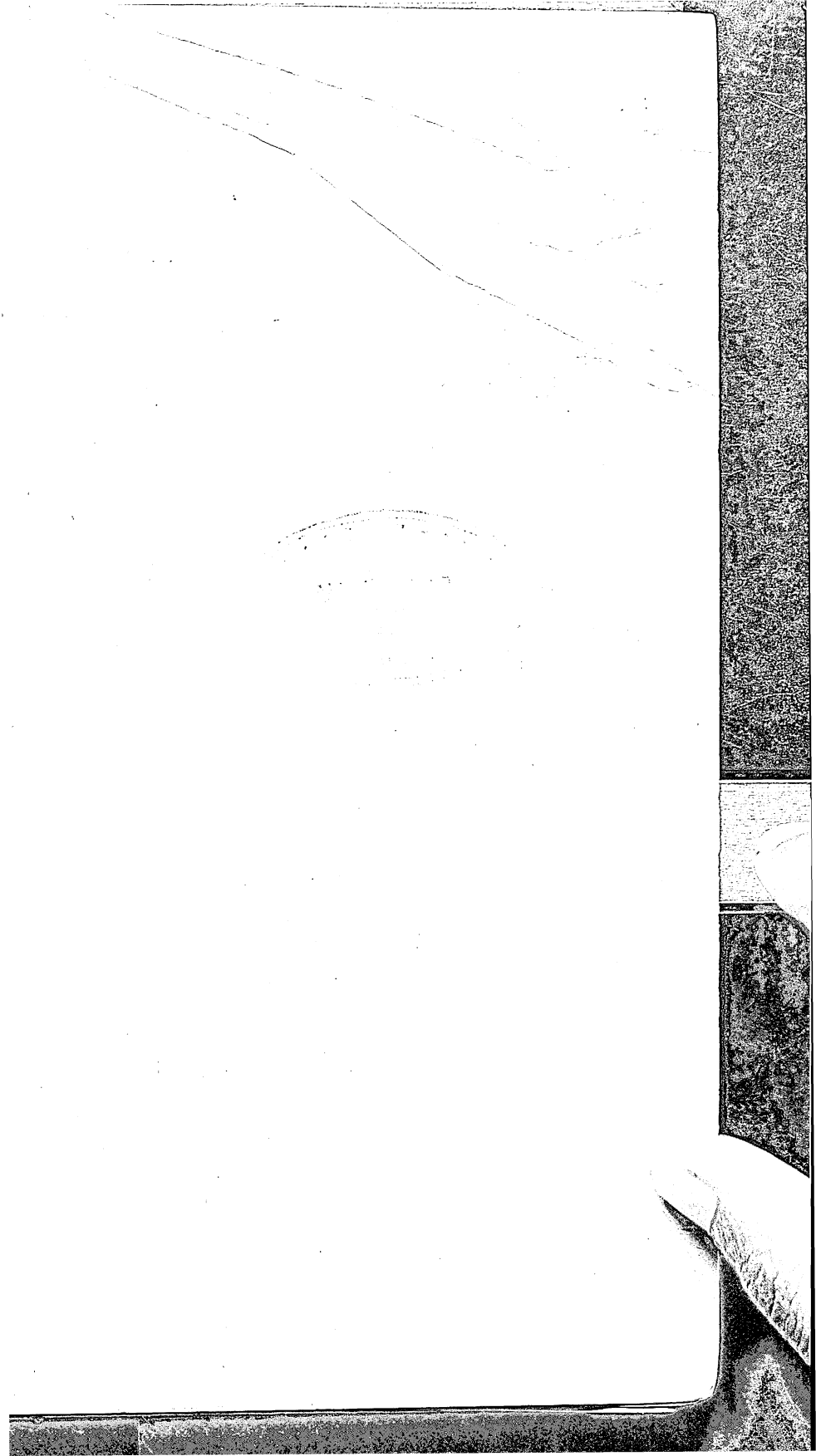
बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु) ।

(८) बाबू जगन्नाथप्रसाद "भानु"।

बाबू जगन्नाथप्रसाद का जन्म श्रावण शुक्ला १० संवत् १९१६ को हुआ था। इनके पिता श्रीयुत बख़्शीराम पलटन में जमादार थे। वे बड़े अच्छे कवि थे। उनका बनाया हनुमन्नाटक प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश में उसका अच्छा आदर है।

स्कूल में अँगरेज़ी तथा हिंदी की साधारण शिक्षा पाकर बाबू जगन्नाथप्रसाद १५) मासिक पर शिक्षाविभाग में नौकर हुए और अपनी योग्यता से इन्होंने क्रमशः यहाँ तक उन्नति की कि आज कल विलासपुर ज़िले में ६५० मासिक वेतन पर असिस्टेंट सेटिलमेंट आफ़िसर हैं। कुछ दिनों के लिये ये सेटिलमेंट आफ़िसर भी रह चुके हैं। यह पद यद्यपि केवल सिविलियनों को ही मिलता है तो भी ये सिविलियन न होकर उस पद तक पहुँच चुके हैं। सरकारी नौकरी के समय इन्होंने प्रजाहित के कई कार्य किए हैं। खंडवा ज़िले में इन्होंने ५० नये रैयतवारी गाँव बसा कर उनका बहुत ही हलका बंदोवस्त किया। अकाल और विशेष कर प्लेग, विसूचिका आदि के समय इनके द्वारा दीन दुखियों को अच्छी सहायता मिला करती है, यहाँ तक कि खंडवा में इनके नाम के भजन गाये जाते हैं। प्रजा और सरकार दोनों ही इन्हें बराबर सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

इन्हें बहुत दिनों से मातृभाषा हिंदी पर बड़ा अनुराग है और ये सदा उसकी सेवा की चिंता ही में लगे रहते हैं। सरकारी कामों के

सिवाय इनका शेष समय साहित्यसेवा में ही बीतता है। काव्य पर इनका प्रेम बहुत अधिक है और ये उस शास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। अब तक इन्होंने छन्दःप्रभाकर, काव्यप्रभाकर, श्रीकृष्णाष्टक और गुलज़ारेसखुन (उर्दू) नामक पुस्तकें लिखी हैं जो सब प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने उर्दू में एक तथा हिंदी में चार पुस्तकें और भी लिखी हैं जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी हैं। छन्दः-प्रभाकर और काव्यप्रभाकर से इनके काव्यशास्त्रसंबंधी पांडित्य का बहुत अच्छा पता लगता है। ये दोनों ग्रंथ हिंदी काव्य के बहुत अच्छे रत्न हैं। इनके लिखने में कई वर्षों का परिश्रम और बहुत धन लगा है। इन पुस्तकों का पूरा अधिकार इन्होंने उनके प्रकाशकों को दे रक्खा है। साथ ही अपने मित्रों को देने के लिये जितनी प्रतियों की आवश्यकता होती है उन्हें आप नगद दाम दे कर ख़रीदते हैं। ये उर्दू में भी बहुत अच्छी कविता करते हैं। उसमें इनका तख़ल्लुस "फ़ैज" रहता है।

सन् १८८५ के लगभग एक बेर ये काशी आकर बाबू रामकृष्ण वर्मा के यहाँ ठहरे थे। वहाँ अनेक विद्वानों के सामने इन्होंने पिंगल का चमत्कार दिखाया था। इनकी प्रतिभा और विद्वत्ता देख सब लोगों ने चकित हो कर कहा था "आप तो साक्षात् पिंगलाचार्य हैं, कवियों में भानु हैं"। तभी से लोग इन्हें "भानु कवि" कहने लगे। जबलपुर, सागर, खंडवा, बैतूल, नरसिंहपुर आदि कई शहरों में भानुकवि-समाज स्थापित हैं। ये यथाशक्ति इन समाजों में सहायता तथा उत्साह-दान देते हैं। इन समाजों में किसी से कुछ चंदा नहीं लिया जाता। इनके उद्योग से कुछ दिनों तक दो मासिकपत्र चलते रहे, पर अंत में कई झगड़ों से वे बंद हो गये।

सरकार तथा देशी रजवाड़ों में भी इनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा

है। गत दिल्लीदरबार के अवसर पर इन्हें शाही सनद और दिल्ली-दरबार-पदक मिला था। हैदराबाद के भूतपूर्व निज़ाम इनसे स्नेह रखते थे। उन्हें इन्होंने एक बेर छन्दःप्रभाकर की एक प्रति भी भेंट की थी। सन् १९०३ में रीवाँनरेश इनसे खंडवा में मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे। एक बेर मैहर के महाराज ने इनसे मिल और इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें एक मानपत्र दिया था। अभी थोड़े दिन हुए श्रीमान रायगढ़नरेश ने इनकी कविता-शक्ति से प्रसन्न होकर इन्हें सम्मानित किया है।

भानु कवि का हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, मराठी और उड़िया भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार है। साथ ही इनकी अँगरेज़ी और संस्कृत की योग्यता भी बहुत अच्छी है। ये सहृदय, उदार, गुणग्राही और शिष्ट हैं। ये गुप्त रीति से दीनों की सहायता किया करते हैं। इनके सब गुणों में विनय और नम्रता मुख्य हैं। शील और संकोच के कारण ये बहुत कम बोलते हैं, तो भी ये प्रिय और मधुरभाषी हैं। लगातार ३४ वर्षों तक सरकार की सेवा करके अब ये पेंशन लेनेवाले हैं। पेंशन लेकर ये अपना सारा समय साहित्य-सेवा में लगाने का विचार करते हैं।

इनके पास सदा दूर से आये हुए कवियों और साहित्य-सेवियों की भीड़ लगी रहती है। इनका एक बहुत बड़ा पुस्तकालय भी है, जिससे बहुत से लोग अच्छा लाभ उठाते हैं।

---

(६) पंडित गोविंदनारायण मिश्र ।

संवत् १८१३ में लाहौर के पंडित गणपति मिश्र, घर से, जगदीश-यात्रा के लिये निकले थे । उस समय कलकत्ता था ही नहीं, लोग बर्दवान होकर जगदीशपुरी जाते थे। बर्दवान पहुँचने पर वहाँ के राजा तेजचंद्र ने पंडित जी की ज्योतिष विद्या से प्रसन्न होकर उन्हें स्थायी वृत्तियाँ दीं और वहीं रहने के लिये उनसे बहुत आग्रह किया, परन्तु आपने इसे अस्वीकार किया। संवत् १८५७ में उनके पुत्र पंडित लक्ष्मीनारायण बर्दवान गये। आप वहाँ दस बरस रह कर काशी चले आये । यहाँ उन्होंने अपना दूसरा विवाह किया । चार बरस पीछे १८७१ में आप फिर बर्दवान चले गये ।

इनके तीन पुत्र हुए । उनमें से सबसे छोटे पंडित गंगानारायणजी ही, हमारे चरितनायक पंडित गोविंदनारायणजी के पिता थे। पंडित गंगानारायणजी प्रसिद्ध बंगाली कृष्णदास पाल के सहपाठी थे । शिक्षा समाप्त होने पर वे अँगरेज़ी आफ़िसों की दलाली करने लगे । रानीगंज प्रांत की कोयले की खानों का पता पहले पहल उनके बड़े भाई पंडित जयनारायणजी ने ही लगाया था। पंडित गंगानारायण का विवाह कलकत्ते में ही हुआ था ।

संवत् १९१६ की कार्त्तिक शुक्ला ३ को पंडित गंगानारायण के घर पंडित गोविंदनारायणजी का जन्म हुआ । साढ़े चार वर्ष की अवस्था

पंडित गोविंदनारायण मिश्र ।
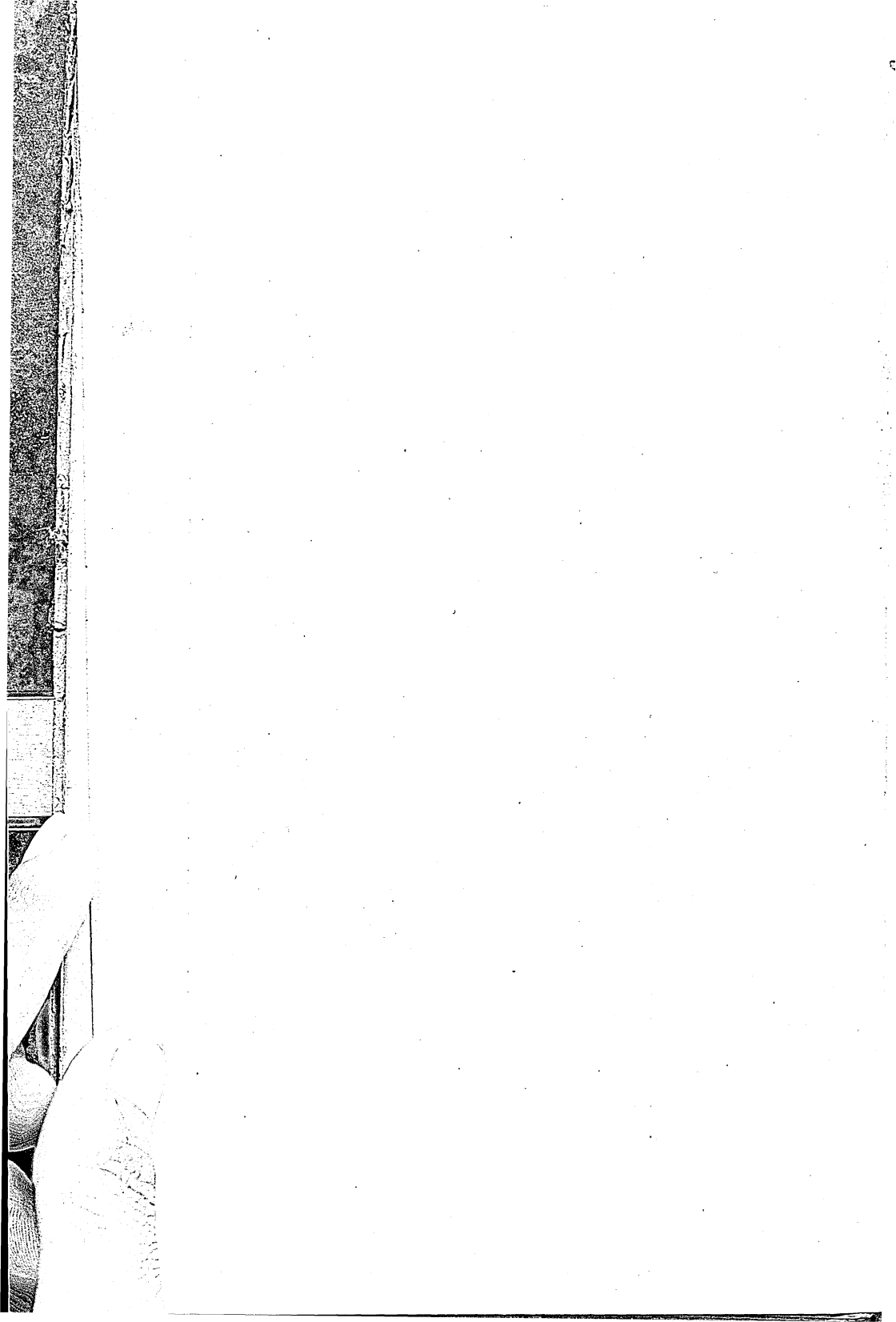
में ही आपको अक्षरारंभ कराया गया। बाल्यावस्था में इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। पंडित गंगानारायणजी की रुचि संस्कृत की ओर अधिक थी, इसीलिये उन्होंने अपने पुत्र की संस्कृत-शिक्षा के लिये काशी से महाराष्ट्र पंडित बुलवाये थे। उन्हीं पंडितों से आपने अमर-कोष, मुहूर्त्तचिन्तामणि, वेद और अष्टाध्यायी के कुछ सूत्र पढ़े। आप न तो कभी घर से अकेले बाहर जाते थे और न लड़कों के साथ व्यर्थ खेलना पसंद करते थे। पाँच ही वर्ष की अवस्था में आपका विवाह हो गया, और उसी वर्ष आप संस्कृत-कालेज में भर्ती किए गए। उन दिनों किरातार्जुनीय, रघुवंश और शकुंतला की पढ़ाई तीसरे दरजे में ही हो जाती थी। अपने अध्यापक पंडित राममय तर्कालंकार की शिक्षा के कारण आप उसी समय संस्कृत में अच्छी कविता करने लग गए थे। उन्होंने एक बेर कहा भी था कि ईश्वर न करे तुम किसी रोग से पीड़ित हो जाओ। दूसरे दरजे में पहुँचते ही आप नेत्ररोग से पीड़ित हो गए और डाक्टरों की सम्मति से पढ़ना छोड़ बैठे। कोई दो सप्ताह बहुत कष्ट पाने के अनंतर आपकी एक आँख तो अच्छी हो गई, लेकिन दूसरी का विकार बना रहा।

पंडित गोविंदनारायणजी ने हिंदी और संस्कृत-साहित्य के साथ ही साथ प्राकृत व्याकरण का भी अच्छा अध्ययन किया है। सन् १८७३ में आपके फुफेरे भाई पंडित सदानंद मिश्र ने सारसुधानिधि नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला; आप उसके साझीदार और सह-कारी सम्पादक हुए। एक वर्ष पीछे आपने उसका साझा छोड़ दिया, केवल लेखादि से उसकी सहायता करते रहे। कभी कभी आपको उसका पूरा संपादन भी करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उचितवक्ता और धर्म-दिवाकर में भी आप लेखादि लिखा करते थे। आप अपने लेख प्रायः बिना नाम के छपवाते थे, इसीलिये आपकी विशेष प्रसिद्धि न हुई।

उन्हीं दिनों भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र तथा पंडित बालकृष्ण भट्टजी से इनका परिचय हुआ। कोई तीस वर्ष पूर्व आपने शिक्षा-सोपान नामक एक बहुत उपयोगी पुस्तक की रचना की थी। उसके दो भाग प्रकाशित और शेष पाँच अप्रकाशित हैं। संवत् १९६१ में आपने "सारस्वतसर्वस्व" नामक एक गवेषणापूर्ण पुस्तक लिखी थी, जिसके कारण सारस्वतसमाज में बड़ी खलबली मची और आपको बहुत कुछ आपत्ति सहनी पड़ी। आपने कलकत्ते में धर्म्मसभा स्थापित कराई थी, जिसके द्वारा पिंजरापोल और एक संस्कृतपाठशाला की स्थापना हुई। आप बहुत अच्छे वक्ता भी हैं। एलबर्ट बिल के समय आपके व्याख्यान पर हज़ारों आदमी मुग्ध होगये थे। एक बेर एक सभा में सभापति ताहिरपुर के राजा शशिशेखरेश्वर राय ने बिना पहिले से कहे सुने एक प्रस्ताव के अनुमोदन के लिये आपका नाम लिया। आपने भी उसी समय खड़े होकर अपनी वक्तृत्व-शक्ति का बहुत अच्छा परिचय दिया। उस समय बड़े बड़े विद्वान् बंगालियों ने आपकी बहुत प्रशंसा की थी।

भारतधर्ममहामण्डल के स्वामी ज्ञानानंद आपको उपाधि देना चाहते थे, पर आपने उसे स्वीकार नहीं किया।

संस्कृत, प्राकृत, हिंदी, अँगरेज़ी और बँगला के अतिरिक्त आप पंजाबी और गुजराती भी जानते हैं, तथा मराठी पुस्तकों का भाव भी समझ लेते हैं। जिन लोगों ने आपके "विभक्तिविचार" और "प्राकृत-विचार" शीर्षक लेख पढ़े हैं, वे आपकी योग्यता से भली भाँति परिचित हैं। नेत्ररोग से पीड़ित होने पर भी आप सदा पुस्तकें पढ़ते रहते हैं।

प्रयाग के द्वितीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति बनाकर लोगों ने आपका अच्छा सम्मान किया था।
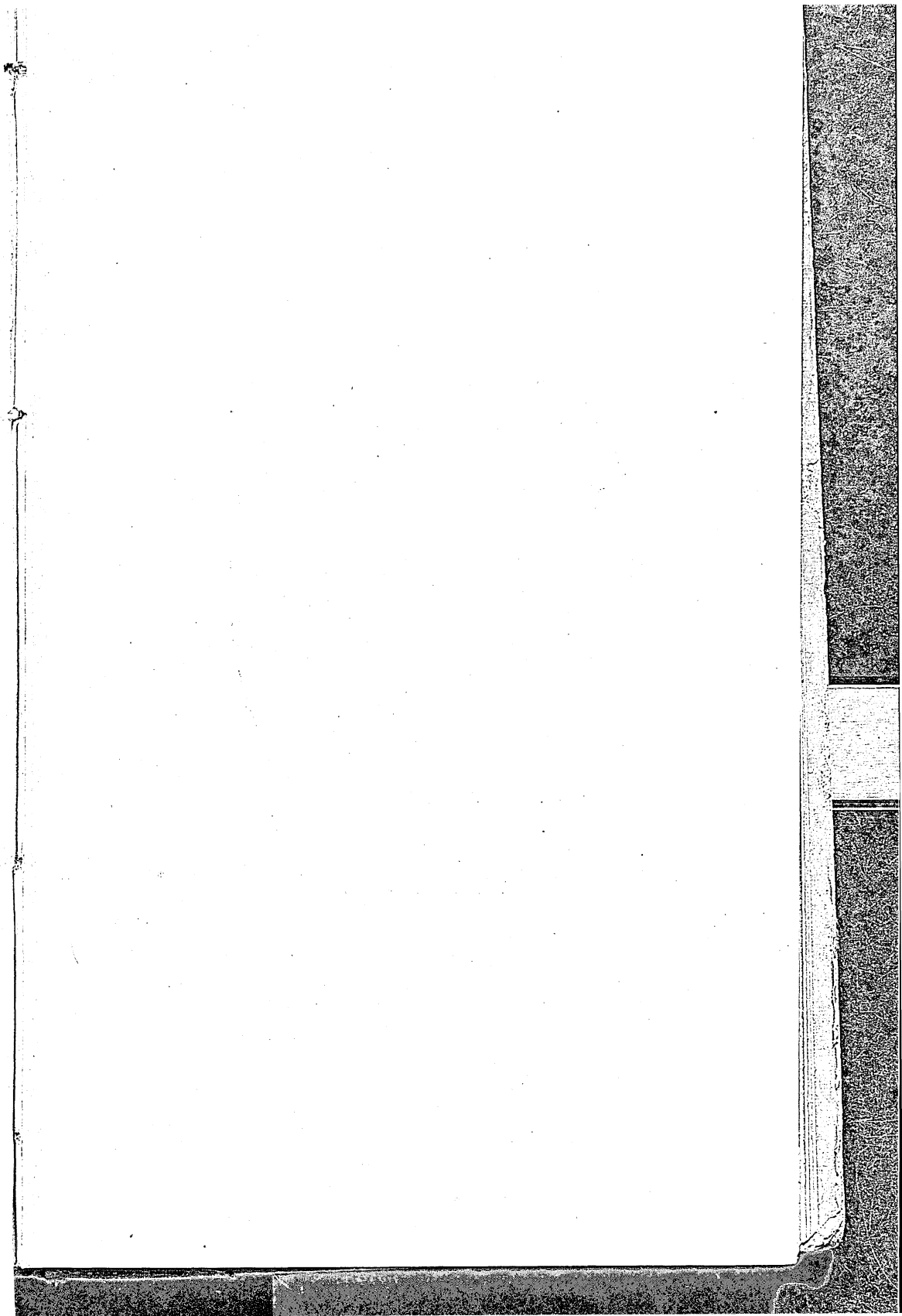
पंडित रामशंकर व्यास।

(१०) पंडित रामशंकर व्यास।
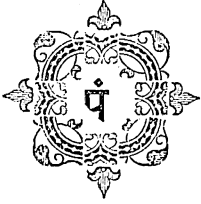
डित रामशंकर व्यास का जन्म काशी के प्रसिद्ध व्यास-कुल में चैत्र शुक्ला रामनवमी संवत् १९१७ (३१ मार्च सन् १८६०) को हुआ था। इनके पिता पंडित गौरीप्रसादजी व्यास बड़े पराक्रमी थे। इन्हें आरंभ से ही संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी की शिक्षा दी गई थी। साथ ही साथ आवश्यक धार्मिक शिक्षा का भी प्रबंध किया गया था। २५ वर्ष की अवस्था में सन् १८८५ में ये आनरेब्ल राय दुर्गाप्रसाद बहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी हुए और पाँच वर्ष तक उस पद पर रहे। इसके अनंतर सन् १८९१ में ये महाराज काशिराज के यहाँ राज्य और इमलाक के काम पर हो गए और कोई दस वर्ष तक तहसीलदार और सब-रजिस्ट्रार रहे। इस अवसर में इन्होंने महाराज तथा उच्च अधिकारियों को अपने कार्य से बहुत प्रसन्न रक्खा। इस समय तक इनके पिताजी उक्त राय दुर्गाप्रसादजी की रियासत में काम करते थे। उन्होंने सन् १९०१ में इन्हें सहायता के लिये अपने पास बुला भेजा। सन् १९०३ में ये गोरखपुर के रईस और तालुक़ेदार राय कृष्णकिशोर की रियासत सरहरी के मैनेजर नियत हुए और अगस्त १९०९ तक उसी पद पर रहे। उस समय इनके पिताजी का स्वास्थ्य ख़राब हो गया और उन्होंने अपने पुत्र को राय दुर्गाप्रसाद साहब की रियासत का स्पेशल मैनेजर मुक़र्रर करा दिया। सन् १९१० में इनके पिताजी

का देहांत हो गया और ये उनके स्थान पर नियुक्त हुए। इनके पिताजी ने उस रियासत को ४५ वर्षों तक सँभाला था। इस समय भी ये उसी पद पर हैं और २५०) मासिक वेतन पाते हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कुछ निज की ज़मींदारी भी है।

कई वर्षों तक ये कविवचनसुधा और आर्यमित्र के अवैतनिक सम्पादक थे। इसके अतिरिक्त सारसुधानिधि और उचितवक्ता आदि पत्रों में भी प्रायः लेखादि भेजा करते थे। इन्होंने खगोलदर्पण, वाक्य-पंचाशिका, नेपोलियन की जीवनी, बात की करामात, मधुमती, चंद्रास्त, नूतन पाठ और राय दुर्गाप्रसाद का जीवनचरित, ये आठ पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त अमृतसर, अलवर, आगरा, हरिद्वार और जौनपुर में देश और धर्म-सुधार पर इनके अनेक व्याख्यान भी हुए हैं। और भाषाओं के अतिरिक्त इन्होंने गुजराती, बँगला और फ़ारसी का भी अभ्यास किया है।

ये परम वैष्णव हैं और नित्य-कर्मोपासक हैं। इन्होंने १४ पुराणों और पाँच उपपुराणों का पाठ किया है। स्वभाव इनका बहुत ही सरल, धर्मभीरु, सत्यप्रिय और मिलनसार है तथा व्यवहार बहुत ही शुद्ध है। सत्संगति, साधुसेवा, मित्रसमागम, काव्य, गान और देशोपकार के कामों की ओर इनकी विशेष रुचि है। इनके सभी इष्ट मित्र और परिचित इनके उत्तम स्वभाव के कारण इनसे बहुत अच्छा व्यवहार रखते हैं। इनके कोई संतान नहीं हुई। इन्हें अपने एकमात्र भ्रातृपुत्र पंडित कालीशंकर व्यास का सहारा था पर उसका भी देहांत हो गया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की अंतरंग मित्रमंडली में सम्मिलित रहने का सौभाग्य आपको प्राप्त है। उक्त बाबू साहब भी आपसे बड़ा स्नेह रखते थे और अपने निष्कपट व्यवहार से इन्हें अपना बनाए रहे।

"भारतेंदु" की उपाधि देने का पहले पहल व्यासजी ने ही प्रस्ताव किया था। भारतेंदु का अस्त होने पर "चंद्रास्त" नाम की पुस्तक लिख कर इन्होंने भारतेंदु के प्रति अपनी गाढ़ी प्रीति और अविचल भक्ति का परिचय दिया था। सन् १९११ से व्यासजी जौनपुर की बेंच के आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं।*

---

* अब आप इस संसार में नहीं हैं।

(११) बाबू शिवनंदनसहाय।

आरा नगर से प्रायः एक कोस पश्चिम इख़्तियारपुर नाम का एक बहुत पुराना गाँव है। वहाँ अधिकतर श्रीवास्तव कायस्थों की ही बस्ती है। बाबू शिवनंदनसहाय का जन्म और निवास-स्थान यही इख़्तियारपुर है। बादशाही समय में इनके पूर्वज आरा परगने के क़ानूनगो हुआ करते थे। इनके दादा बाबू गुरुसहाय ग़ाज़ीपुर के तहसीलदार थे। बाबू गुरुसहाय के चार पुत्र थे जो सबके सब पढ़े लिखे तथा सरकारी अदालतों में अच्छे पदों पर नियुक्त थे। बाबू कालीसहाय उन चारों में से सबसे छोटे थे। इनके दो पुत्र हुए, बाबू शिवनंदनसहाय और महानंदसहाय। छोटे महानंदसहाय का देहांत बाल्यावस्था ही में हो गया था।

बाबू शिवनंदनसहाय का जन्म संवत् १९१७ आश्विन शुक्ला २ सोमवार को हुआ था। बाल्यावस्था में इन्हें नियमानुसार पहिले फ़ारसी की ही शिक्षा दी गई थी। कुछ सयाने होने पर ये बाँकीपुर में जाकर अँगरेज़ी पढ़ने लगे। वहीं इन्होंने इंट्रेंस पास किया। इसके अनंतर २१ वर्ष की अवस्था में ये वहाँ की जजी में सेकेंड क्लार्क हो गए। उस पद पर कुछ दिनों काम कर चुकने पर इनकी उन्नति हुई। पहिले ये अकाउंटेंट और फिर हेड क्लार्क नियत हुए। आज कल ये उसी दफ़्तर में अनुवादक का काम करते हैं।

युवावस्था में इन्होंने स्वर्गीय साहित्याचार्य पंडित अंबिकादत्त व्यास

बाबू शिवनंदनसहाय ।

के अनेक व्याख्यान सुने थे और उन्हों के उत्साह दिलाने पर इनकी रुचि हिंदी की ओर हुई। ये हिंदी पढ़ने लगे और थोड़े ही दिनों में इन्होंने हिंदी के अनेक ग्रंथ पढ़ डाले। गोस्वामी तुलसीदास तथा भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के ग्रंथों को ये बड़ी रुचि से पढ़ा करते थे। उन्हीं ग्रंथों को देख कर इन्हें कविता करने का उत्साह हुआ। पटना हरिमंदिर के महंत बाबा सुमेरसिंहजी हिंदी काव्य के बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। उन्हीं से ये कविता सीखने लगे और थोड़े ही समय में उसमें इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इसके अनंतर इन्होंने बँगला और पंजाबी भाषाओं का भी अभ्यास कर लिया।

स्वर्गीय पंडित अंबिकादत्त व्यास के साथ इन्होंने युक्त प्रांत तथा पंजाब के सभी मुख्य मुख्य स्थानों में भ्रमण किया था। इसके अतिरिक्त ये स्वयं भी सपरिवार अनेक तीर्थों तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा कर चुके हैं।

हिंदी गद्य और पद्य में इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें दयानंदमतमूलोच्छेद, विचित्रसंग्रह, सुदामानाटक, कविताकुसुम, कृष्ण और सुदामा आदि विशेष उल्लेख के योग्य हैं। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की बड़ी जीवनी के लेखक भी ये ही हैं। पंडित अंबिकादत्त व्यासकृत गोसंकट नाटक का इन्होंने अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद की एक जीवनी भी इन्होंने लिखी है, जिसके एक ही वर्ष में दो संस्करण हो चुके हैं। इस समय ये सिक्खगुरुओं की जीवनी लिखने में लगे हुए हैं।

इनका स्वभाव बहुत सरल है। ये कट्टर सनातनधर्म्मावलंबी हैं। साधु-महात्माओं की संगति और सेवा में ये बहुत प्रसन्न रहते हैं। ये कानों से कुछ ऊँचा सुनते हैं।

इस समय इनकी तीन कन्याएँ और दो पुत्र वर्त्तमान हैं। बड़े पुत्र बाबू व्रजनंदनसहाय आरे में वकालत करते हैं। ये हिंदी के अच्छे कवि तथा लेखक हैं।
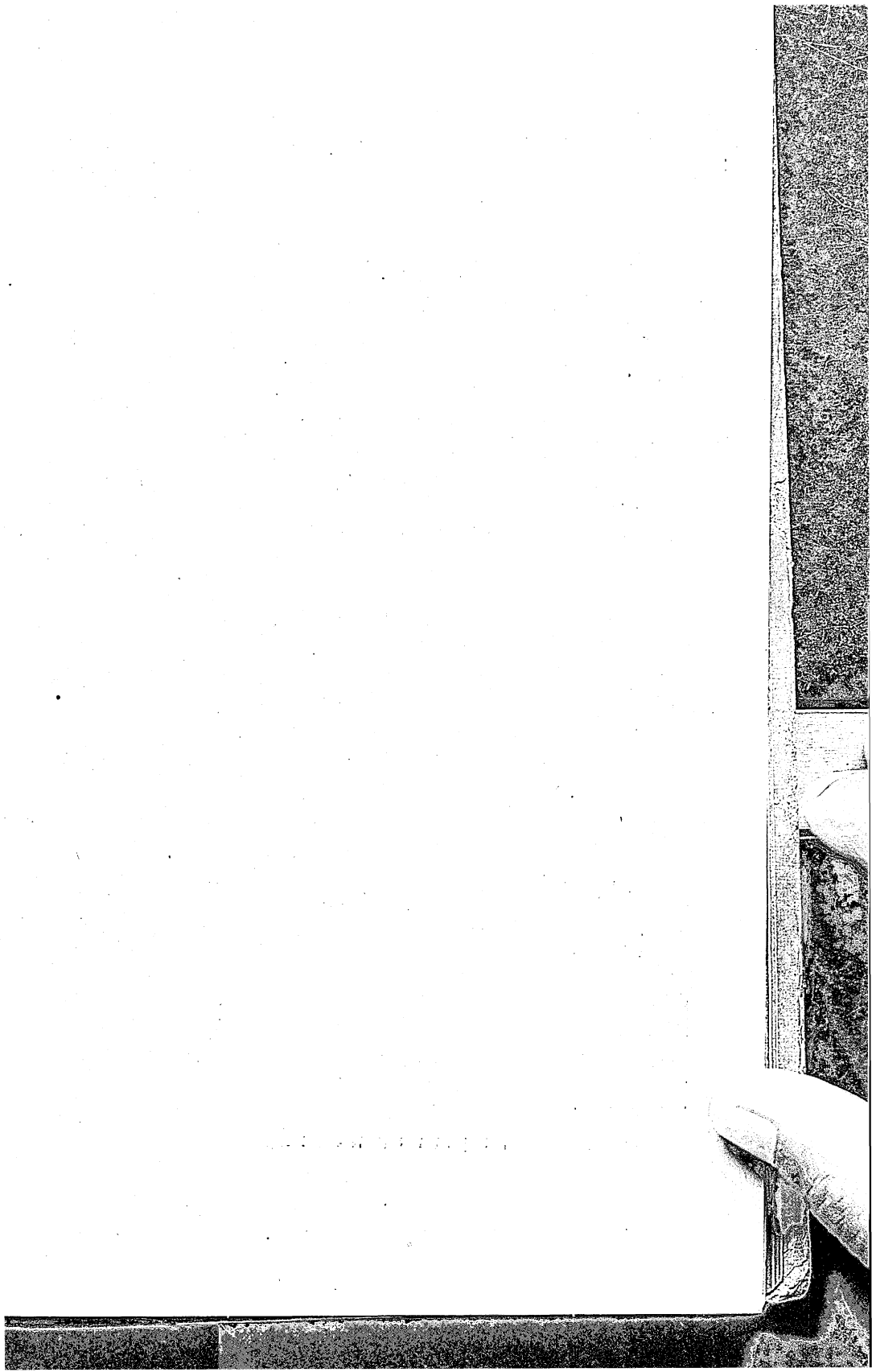
पंडित युगलकिशोर मिश्र (ब्रजराज)।

(१२) पंडित युगलकिशोर मिश्र "व्रजराज"।

कभी कभी देखा जाता है कि मनुष्य किसी विषय का अच्छा विद्वान् या उसमें पारंगत होने पर भी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि का इच्छुक न होने के कारण गुमनाम ही रह जाता है। ऐसे विद्वानों को प्रायः बहुत ही कम लोग जानते हैं। यदि संयोगवश किसी ने कोई अवसर पाकर सर्व-साधारण से उनका परिचय करा दिया तो ठीक ही है और नहीं तो सब लोग उनसे तथा उनके गुणों से अपरिचित ही रह जाते हैं। पंडित युगलकिशोर मिश्र इसी श्रेणी के विद्वानों में हैं।

मिश्रजी के पूर्वज माँझगाँव के मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे लोग भगवंतनगर के रहनेवाले थे, पर इनके दादा लखनऊ आ रहे थे। ग़दर में इनके पिता पंडित लेखराज, जो चकलेदार थे, लखनऊ से गँधौली ज़िला सीतापुर में जा रहे। उनकी पहली स्त्री से लाल-विहारी (द्विजराज) तथा उसके पश्चात् दूसरी स्त्री से पंडित युगलकिशोर तथा रसिकविहारी नामक तीन पुत्र हुए। मिश्रजी का जन्म अगहन बदी १३ संवत् १९१८ को हुआ था। पिता के बाद इनकी जायदाद का आधा भाग लालविहारीजी को तथा आधा भाग पंडित युगल-किशोर और पंडित रसिकविहारी को मिला। उस समय इनकी ज़मीं-दारी पर क़र्ज़ बहुत था। उसके चुकाने तथा कई बेर बहुत अधिक बीमार होने के कारण ही कदाचित् यह साहित्य-क्षेत्र में न आ सके। ज़मींदारी के सिवा इनके यहाँ महाजनी भी होती है। तो भी अव-

काश के समय ये फुटकर कविता करते और लोगों को काव्य पढ़ाया ही करते हैं।

बाल्यावस्था में इन्हें फ़ारसी की ही शिक्षा मिली थी। गुलिस्ताँ बोस्ताँ, बहारदानिश आदि पुस्तकें पढ़ने के पीछे इन्होंने संस्कृत-काव्य के अनेक ग्रंथ पढ़े। पर अँगरेज़ी पढ़ने का इन्हें अवसर नहीं मिला। इनके पिता तथा बड़े भाई बहुत अच्छे कवि थे और उनके पास प्रायः अच्छे अच्छे कवि आया करते थे। इनकी रुचि पहले से ही कविता की ओर थी, इसके अतिरिक्त ये संस्कृत तथा हिंदी में काव्यसंबंधी कई ग्रंथ पहले ही पढ़ चुके थे। तिस पर अच्छे अच्छे कवियों से मिलते रहने के कारण इन्होंने काव्यशास्त्र में अच्छी गति प्राप्त करली। इनके पिता के पास जो समस्याएँ आया करती थीं उनकी पूर्ति ये भी किया करते थे और वे पूर्तियाँ काशी के कविसमाज और कविमंडल, पटना के कविसमाज और कानपुर के रसिकसमाज के मुखपत्रों में छपा करती थीं। बिसवाँ कविमण्डल से इन्हें साहित्य-शिरोमणि की उपाधि भी मिली। प्रायः ६० मनुष्यों को इन्होंने कविता सिखलाई, जिनमें कई मुसलमान भी थे। पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०, ठाकुर रामेश्वरबख़्शसिंह ताल्लुक़ेदार आदि ने मिश्रजी से ही काव्य पढ़ा है। सरदार, सेवक, लछिराम, अयोध्यानरेश, भारतेंदुजी, बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि स्वर्गीय कवियों से इनका बहुत अच्छा परिचय था। इसके सिवा राय देवीप्रसाद (पूर्ण), बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, कविराज मुरारिदान तथा अन्य प्रतिष्ठित कवियों से भी इनका परिचय है।

आज कल पंडित युगलकिशोर "साहित्यपारिजात" नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ लिख रहे हैं और "शब्दरसायन" की टीका कर रहे हैं। कविताओं का संग्रह इनके पास बहुत अच्छा है। जिस कवि की जिस

अलंकारयुक्त कविता आप चाहें इनसे तुरंत सुन सकते हैं। यही नहीं वरन् मिश्रजी प्रत्येक कविता की बारीकियाँ और भिन्न भिन्न विद्वानों के मत से उनके गुण तथा दोष भी बड़ी उत्तमता से बतला देते हैं, जिससे सुननेवालों को बहुत प्रसन्नता होती है और काव्यशास्त्र की इनकी पूर्ण विद्वत्ता भी प्रकट हो जाती है।

एक बेर इनके पिताजी काशीवास के लिये काशी आए थे। युगलकिशोरजी भी उनके साथ थे। उस समय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का परलोकवास हो चुका था। मिश्रजी ने रत्नाकरजी तथा अन्य कवियों से काशी में एक नवीन कविसमाज स्थापित करने का प्रस्ताव भी किया था, पर उसका कुछ फल न होसका।

युगलकिशोरजी* को कोई संतान नहीं है, छोटे भाई रसिकविहारी के एक कन्या और तीन पुत्र हैं। उन्हीं को ये अपनी संतति के समान मानते हैं। इनके सबसे बड़े भतीजे चि० कृष्णविहारी, केनिंग कालेज लखनऊ में, एम० ए० में पढ़ते हैं।

---

* कुछ समय हुआ, आपका देहान्त हो गया।

(१३) रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ एम० ए०।
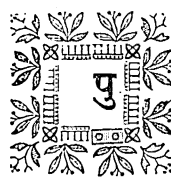
पुरोहित गोपीनाथ का जन्म राजपूताने की प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध पारीक (ब्राह्मण) जाति में चैत्र कृष्ण १३ संवत् १९१९ (सन् १८६३) को जयपुर में हुआ था। इनके पिता पंडित रामधनजी इन्हें ३ ही वर्ष का छोड़ स्वर्ग सिधार गए थे। इसलिये इनके पालन और शिक्षा का भार इनकी माता पर आ पड़ा। सात वर्ष की अवस्था में इन्होंने हिंदी लिखने पढ़ने का साधारण अभ्यास कर लिया। ९ वर्ष की अवस्था में ये जयपुर के महाराजकालेज में अँगरेज़ी शिक्षा के लिये बैठाए गए। उसी समय इन्हें हिंदी में कविता करने का शौक़ हुआ था। महाराजकालेज में एफ़० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर सन् १८८७ में ये आगरा कालेज में भर्ती हुए। सन् १८८८ में संस्कृत और अँगरेज़ी भाषा में इन्होंने डबल आनर्स (Double Honours) के साथ बी० ए० और दूसरे ही वर्ष अँगरेज़ी भाषा की एम० ए० परीक्षा पास करके डिग्री प्राप्त की। वहीं ये वकालत की परीक्षा में भी सम्मिलित हुए। सन् १८९० के आरम्भ में ये जयपुर लौटे। वहाँ दो एक मास तक महाराजकालेज में अध्यापक रह कर उसी वर्ष अप्रैल में राज्य की ओर से प्रतिनिधि नियुक्त हो कर राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल की सेवा में आबू गए। इस उच्च पद पर नियुक्त होनेवाले ये पहले ही जयपुरनिवासी थे। उस पद पर ये प्रायः १५ वर्ष तक रहे। इस बीच में इन्होंने अपनी योग्यता और सद्गुणों से महाराज तथा अँग-

रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ एम० ए० ।

रेज़ सरकार के अफ़सरों को बहुत प्रसन्न और संतुष्ट किया। इसके पीछे सन् १६०५ में ये राज्य की कौंसिल के मेंबर नियुक्त हुए और अब तक उसी पद पर प्रतिष्ठित हैं।

सन् १६०७ में सम्राट् सप्तम एडवर्ड के जन्मदिनोत्सव पर इन्हें अँगरेज़ सरकार की ओर से रायबहादुर की पदवी मिली थी।

यों तो आप ३५ वर्षों से हिंदी की कुछ न कुछ सेवा बराबर करते चले आते हैं परंतु हिंदी के लिये अधिकांश कार्य आपने आबू में ही रह कर किए। सामयिक पत्रों के लिये समय समय पर अच्छे लेख लिखने के अतिरिक्त शेक्सपियर के कई नाटकों का आपने हिंदी में अच्छा अनुवाद किया है। वीरेंद्र, मित्रता, सतीचरित्रचमत्कार और शवागारशोकोक्ति आदि पुस्तकें इनकी गद्य और पद्य रचना के अच्छे उदाहरण हैं। भर्तृहरिकृत नीति, शृंगार और वैराग्यशतक का "भर्तृहरि-शतकत्रयम्" नाम का जो हिंदी और अँगरेज़ी अनुवाद आपने किया है वह भी बहुत अच्छा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने राजनीति, इतिहास और विज्ञानसंबंधी कई पुस्तकें लिखी हैं। पर वे अभी तक प्रकाशित नहीं हुई। आप अँगरेज़ी के भी अच्छे लेखक और वक्ता हैं। हिंदी अँगरेज़ी और संस्कृत पुस्तकों का आपके पास बहुत अच्छा संग्रह है।

एक बड़ी देशी रियासत में उच्च पद पर रहने के कारण, देश के बहुत बड़े बड़े लोगों से आपका परिचय है। स्वभाव आपका शुद्ध और सरल है, रहन सहन भी बहुत साधारण है। जयपुर-रियासत में आपकी गणना अच्छे विद्यानुरागियों और सदाचारियों में होती है।

---

(१४) मेहता लज्जाराम शर्म्मा।

मेहता लज्जारामजी बड़नगर (गुर्जर) ब्राह्मण हैं। इनका ऋग्वेद, शांखायनी शाखा, औचथ्यस गोत्र और मेहता अवटंक है। नियमानुसार इनके वंश में दान या कन्या का धन लेना वर्जित है और बहुत ही निषिद्ध समझा जाता है।

इनके पूर्वज पहले गुजरात के बड़नगर नामक स्थान में रह कर व्यापार करते थे। संवत् १८१५ के लगभग इनके प्रपितामह बूँदी, कोटा आदि राज्यों से होते हुए सवाई माधवपुर पहुँचे। उनके पुत्र गणेशरामजी कई स्थानों से होते हुए बूँदी चले गए थे। संवत् १९११ में उनके पुत्र गोपालरामजी (मेहता लज्जारामजी के पिता) बूँदी राज्य में नौकर हुए। राज्य का तोशाख़ाना उनके सुपुर्द था। उसी पद पर २७ वर्ष तक उन्होंने अपना जीवन बिता दिया और एक को छोड़ कर किसी दूसरे मालिक की नौकरी नहीं की। संवत् १९३८ में उनका देहांत हो गया। उनके दस पुत्र और पाँच कन्याएँ थीं। पर दुर्भाग्य-वश इस समय उनमें से लज्जारामजी के अतिरिक्त और कोई भी जीवित नहीं है। उनके एक भाई की केवल स्त्री जीवित है और एक बहिन का पुत्र। *

---

* लज्जारामजी के ये भांजे पंडित रामजीवन नागर हैं, जिन्होंने हिंदी में कई अच्छी पुस्तकें अनुवाद की और लिखी हैं।

मेहता लज्जाराम शर्म्मा।

लज्जारामजी का जन्म चैत्र कृष्ण २ संवत् १६२० को बूँदी राज्य में हुआ था। बूँदी में कोई स्कूल न होने के कारण इनकी यथोचित शिक्षा न हो सकी। तो भी इन्होंने अपने शौक़ से अँगरेज़ी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, मराठी, गुजराती और उर्दू आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। पिताजी के मरने के समय इनकी अवस्था १८ वर्ष की थी, इसलिये इन्हें अपने पिता का पद मिल गया। इन्हें विद्याभ्यास का शौक़ अधिक था, इस लिये तीन वर्ष तक उस पद पर रहने के अनंतर इन्होंने अपनी बदली शिक्षाविभाग में करा ली। उस समय ये बूँदी की पाठशाला में सेकेंड मास्टर के पद पर नियुक्त हुए। इस काम को इन्होंने १८ वर्ष तक किया। इस बीच में कुछ दिनों तक ये "श्रीरंगनाथ मुद्रालय" के मैनेजर और कोई चार वर्ष तक "सर्वहित" नामक पाक्षिक पत्र के संपादक रहे। इसी प्रकार घर पर रह कर ही ये अपना समय व्यतीत करते थे। पर एक बेर राज्य के एक उच्च अधिकारी से किसी सामाजिक कार्य में इनकी खटपट हो गई और सेठ खेमराज के बुलाने पर ये "श्रीवेंकटेश्वरसमाचार" का संपादन करने के लिये बंबई चले गए। सन् १८६७ से १६०४ तक इन्होंने "श्रीवेंकटेश्वर" का संपादन किया। इनके संपादनकाल में उक्त पत्र में सनातनधर्म, सामाजिक सुधार, कृषि, शिल्प और वाणिज्य आदि पर उपयोगी लेख निकलते रहे और पत्र की अच्छी उन्नति हुई। अनुवाद और स्वतंत्र सब मिला कर अब तक आपने हिंदी में २५ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। स्वतंत्र लिखे हुए उपन्यासों में धूर्त रसिकलाल, हिंदूगृहस्थ, आदर्शदंपति, बिगड़े का सुधार आदि कई सामाजिक घटनापूर्ण उपन्यास बहुत उत्तम और सुपाठ्य हैं। इसके अतिरिक्त इनकी अमीर अब्दुलरहमान, विक्टोरियाचरित्र, वीरबलविनोद, भारत की कारीगरी आदि पुस्तकें

संगृहीत और कपटी मित्र, विचित्र स्त्रीचरित्र, राजशिक्षा, बालोपदेश और नवीन भारत आदि पुस्तकें अनुवादित हैं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में ही छपी हैं और श्रीवेंकटेश्वरपत्र के संपादन-काल में ही लिखी गई हैं।

बम्बई में जब इनका स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो गया तो संवत् १९६१ में ये फिर बूँदी चले गए और वहीं राज्य में एक अच्छे पद पर नियुक्त हो गए। राजा और प्रजा दोनों का ही इन पर समान विश्वास और प्रेम था। इसलिये इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर बूँदीनरेश ने इन्हें राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल की सेवा में राज्य की ओर से वकील बना कर भेज दिया। अब तक आप उसी पद पर नियुक्त हैं और योग्यतापूर्वक अपना कार्य करते हैं।

ये परम वैष्णव हैं और सांप्रदायिक झगड़ों से सदा अलग रहते हैं। गाने बजाने, खेल तमाशे, या सैर सपाटे का इन्हें ज़रा भी शौक़ नहीं है। इनका अवकाश का समय पुस्तकें पढ़ने या लेख आदि लिखने में जाता है। स्वभाव इनका बहुत ही सीधा सादा और मिलन-सार है। किसी से विरोध हो जाने पर भी ये उसके गुणों की प्रशंसा ही करते हैं और सदा उससे शिष्ट व्यवहार रखते हैं। अभिमान या और कोई दोष इन्हें छू तक नहीं गया है।
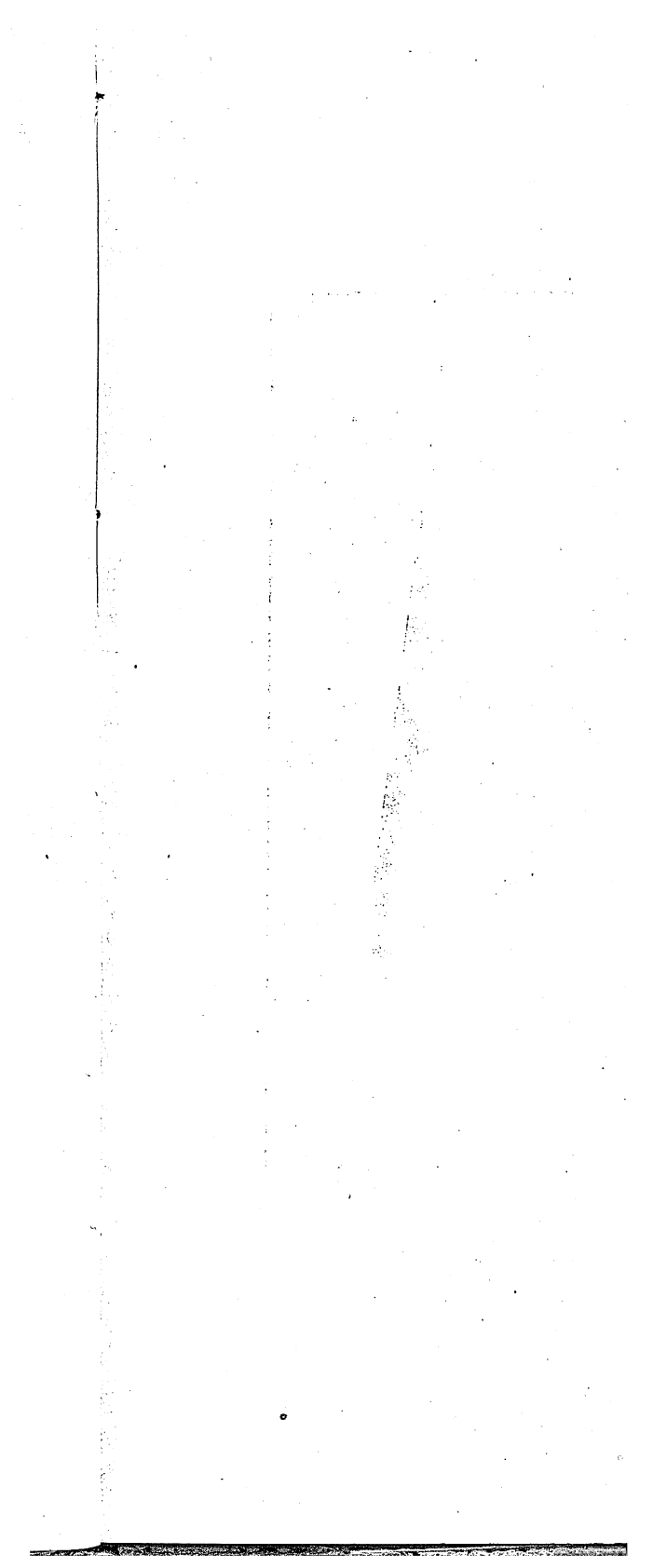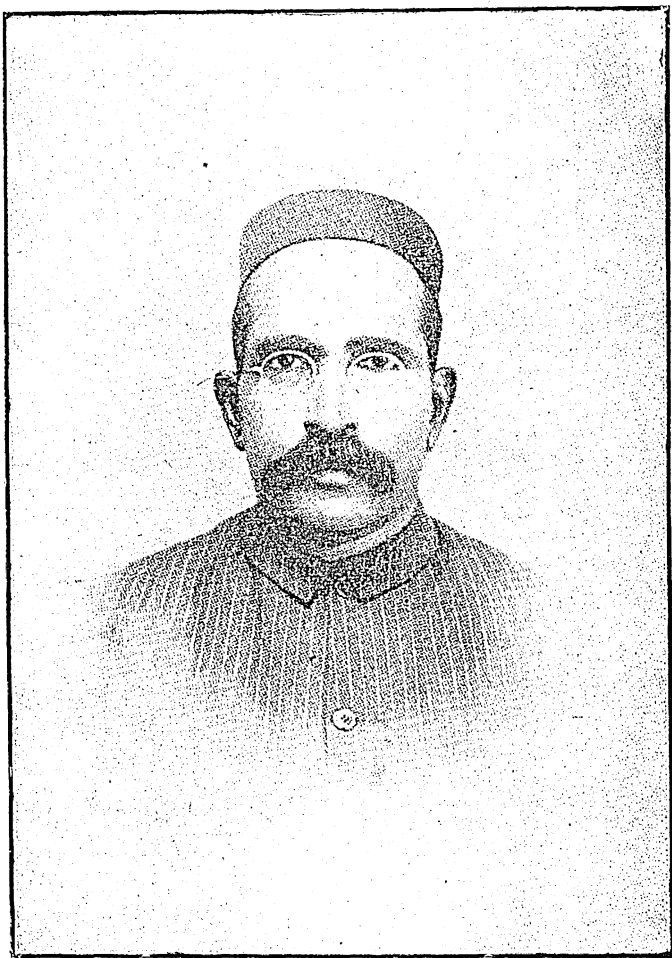
पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।

(१५) पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

अवध प्रांत के अंतर्गत ज़िला रायबरेली में दौलतपुर नाम का एक गाँव है। दौलतपुर में हनुमंत द्विवेदी नाम के एक प्रसिद्ध पंडित हो गये हैं। इनके दुर्गाप्रसाद, रामसहाय और रामजन ये तीन पुत्र थे। रामजन तो बाल्यावस्था ही में मर गये। दुर्गाप्रसाद गौरा के तअल्लुक़ेदार के यहाँ नौकर थे। उनमें एक गुण बड़ा विलक्षण था कि वे तरह तरह के नए नए बड़े ही मनोरंजक क़िस्से बना कर कहा करते थे। तीसरे रामसहाय फ़ौज में नौकर थे। सिपाहीविद्रोह के पीछे वे फ़ौजी नौकरी छोड़ कर बंबई में गोस्वामी चिमनलाल और फिर गोस्वामी नृसिंहलाल के यहाँ नौकर हो गए थे। वे बड़े भगवद्भक्त थे और महावीरजी का इष्ट रखते थे। उनके एक कन्या और एक पुत्र, दो संतान हुए।

रामसहाय के पुत्र का जन्म संवत् १९२१, वैशाख शुक्ल ४ को हुआ और उसका नाम महावीरप्रसाद रक्खा गया। महावीरप्रसाद के जन्म के आध घंटे बाद जातकर्म होने के पहले पंडित सूर्यप्रसाद द्विवेदी नामक एक ज्योतिर्विद् ने उनकी जिह्वा पर सरस्वती का बीज-मंत्र लिखा। गाँव के मदरसे में इन्होंने हिंदी और उर्दू पढ़ी और घर पर अपने चाचा पंडित दुर्गाप्रसाद के प्रबंध से इन्होंने थोड़ा सा संस्कृत-व्याकरण, दुर्गा सप्तशती, विष्णुसहस्रनाम, शीघ्रबोध और मुहूर्तचिंतामणि आदि पुस्तकें कंठ कीं। देहाती मदरसे की शिक्षा

समाप्त होने पर ये ३२ मील दूर रायबरेली के हाई स्कूल में अँगरेज़ी पढ़ने के लिये भेजे गए। उस समय इनकी अवस्था सिर्फ़ १३ वर्ष की थी। अँगरेज़ी के साथ इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी हुई, क्योंकि उस स्कूल में संस्कृत पढ़ाई ही नहीं जाती थी।

दौलतपुर से रायबरेली बहुत दूर पड़ती थी। इसलिये वहाँ से चले आकर इन्होंने ज़िला उन्नाव के पुरवा क़स्बे में ऐँगलो वर्नाक्यूलर टाउन स्कूल में नाम लिखाया। पर कुछ दिनों पीछे वह स्कूल टूट गया। तब ये फ़तहपुर के स्कूल में गए और वहाँ से उन्नाव। उन्नाव से ये अपने पिता के पास बंबई चले गए। बंबई में इन्होंने मराठी और गुजराती सीखी और संस्कृत और अँगरेज़ी का भी कुछ अभ्यास किया। कुछ दिन विद्याध्ययन करने के अनंतर अपने देश के चार यार दोस्तों के कहने में आकर इन्होंने रेलवे में नौकरी कर ली। वहाँ से ये नागपुर आए। परन्तु वह जगह पसंद न आने से इन्होंने अजमेर की यात्रा की और वहाँ राजपूताना रेलवे के लोको आफ़िस में नौकर हो गए। परंतु वहाँ से एक वर्ष पीछे वे फिर बंबई चले आए।

बंबई आकर इन्होंने तार का काम सीखा और फिर जी० आई० पी० रेलवे में सिगनेलर हो गए। वहाँ क्रम क्रम से इनकी उन्नति होती रही। हर्दा, खंडवा, हुशंगाबाद और इटारसी में इन्होंने कोई पाँच वर्ष काम किया। उसी बीच में तार के काम के सिवा इन्होंने और और काम भी सीखे। फ़ौज के काम में इन्होंने विशेष करके सबसे अधिक प्रवीणता प्राप्त की।

जबलपुर के डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपरेंटेंडेंट, डबलू० बी० राइट जब इंडियन मिडलैंड रेलवे के जनरल ट्रेफ़िक मैनेजर हुए तब उन्होंने इन्हें अपने साथ ले जाने के लिये चुना और झाँसी में टेलिग्राफ़ इंस्पेक्टर नियत किया। यहाँ पर कानपुर से इटारसी और आगरे से मानिकपुर

तक सारी लाइन का तारसंबंधी काम इनके सुपुर्द हुआ। इन्होंने तार-संबंधी एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी और नई तरह का लाइन-क्लियर ईजाद करने में बड़ी योग्यता दिखलाई। कुछ दिनों बाद ये हेड टेलिग्राफ़ इंस्पेक्टर कर दिए गए।

रात दिन के दौरे के काम से इनकी तबीयत उकता गई थी। इसलिये इन्होंने जनरल ट्रेफ़िक मैनेजर के दफ़्तर में अपनी बदली करा ली। यहाँ ये क्लेम्स डिपार्टमेंट के हेड क्लर्क नियत हुए। जब आई० एम० और जी० आई० पी० दोनों रेलें एक हो गईं तब ये बंबई बदल गए। वहाँ इनको एक विशेष ऊँचा पद मिलनेवाला था। पर वहाँ रहना इन्होंने स्वीकार न करके पुनः झाँसी को अपनी बदली करा ली। इस बेर ये डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपरेंटेंडेंट के चीफ़ क्लर्क हुए।

झाँसी में ही बंगालियों की संगति से इन्होंने बँगला भाषा का अभ्यास किया और संस्कृत में विशेष करके काव्य और अलंकार शास्त्र का अध्ययन किया। इन्हें हिंदी कविता का लड़कपन ही से शौक़ था। बस, इन्होंने हिंदी भाषा की सेवा करने के लिये क़लम उठाई। इस समय आप हिंदी के जैसे सुप्रसिद्ध और सुयोग्य लेखक हैं वह किसी से छिपा नहीं है।

द्विवेदीजी नौकरी छोड़ कर साहित्यसेवा करने का विचार पहिले ही से कर रहे थे। इतने में एक ऐसी घटना हो गई जिसके कारण उन्हें नियत समय से कुछ पहले ही अपने विचार को कार्य में परिणत करना पड़ा। झाँसी में पुराने डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपरेंटेंडेंट की बदली हो जाने पर जो नए साहब आए उनसे इनसे कुछ कहा सुनी हो गई। उसी पर इन्होंने अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। तब से ये बिलकुल स्वतंत्र होकर हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं।

द्विवेदीजी ने जो योग्यता प्राप्त की है वह सब अपने ही परिश्रम का फल है। एक पुरुष अपने ही उद्योग से कहाँ तक विद्वत्ता प्राप्त कर साहित्यसेवा कर सकता है इसके आप आदर्श हैं। रेलवे के काम में रह कर भी विद्याध्ययन बनाए रखना आपकी दृढ़ प्रकृति का परिचय देता है। इस समय आप हिंदी की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती के संपादक हैं। आपके द्वारा सम्पादित सरस्वती दिन दूनी उन्नति कर रही है। आप अपना सारा समय लिखने पढ़ने ही में बिताते हैं।

द्विवेदीजी हिंदी और संस्कृत दोनों भाषाओं के कवि हैं। नई तरह की हिंदी कविता जो आज कल सामयिक पत्रों और पुस्तकों में देखी जाती है उसके आप पूर्ण पक्षपाती हैं। आपकी कुछ कविताएँ काव्यमंजूषा नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई हैं। "कुमारसम्भवसार" आपकी कवित्वशक्ति का अच्छा नमूना है।

द्विवेदीजी समालोचक भी हैं। आपकी "नैषधचरितचर्चा", "विक्रमांकदेवचरितचर्चा", "कालिदास की निरंकुशता", "हिंदी कालिदास की समालोचना" आदि पुस्तकें इसका प्रमाण है।

जब से द्विवेदीजी ने नौकरी छोड़ी है तब से प्रति वर्ष आप एक न एक नई और उपयोगी पुस्तक लिखते हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल की "लिबर्टी" नामक पुस्तक का जो अनुवाद आपने किया है वह "स्वाधीनता" नाम से प्रसिद्ध है। उसके दो संस्करण हो चुके हैं। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर की "एजुकेशन" नामक पुस्तक का भी अनुवाद आपने किया है। इसका नाम "शिक्षा" है। आपकी तीसरी पुस्तक "संपत्ति-शास्त्र" है। हिंदी भाषा में यह पुस्तक अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त आपने महाभारत, रघुवंश आदि कई अच्छे ग्रंथ लिखे हैं। इन पुस्तकों के पहिले द्विवेदीजी ने "बेकनविचाररत्नावली" नामक

पुस्तक द्वारा लार्ड बेकन के मुख्य मुख्य निबंधों का अनुवाद भी प्रकाशित किया है।

द्विवेदीजी बहुत वर्षों तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के साधारण सभासद रह चुके हैं। इस समय वे उसके आनरेरी सभासद हैं। सभा के लिये आपने वैज्ञानिक कोश में प्रकाशित करने के लिये दार्शनिक परिभाषा लिख कर सभा की बहुत सहायता की है।

द्विवेदीजी बड़े परिश्रमी हैं। लिखने पढ़ने में आप अपना सारा समय बिताते हैं। अधिक परिश्रम के कारण आप प्रायः अस्वस्थ रहते हैं। ईश्वर हिंदी के ऐसे सेवक को चिरकाल तक जीवित रख कर हिंदी का उपकार करे, यही सब हिंदी-प्रेमियों की प्रार्थना और मनोकामना है।

---

(१६) पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी, बी० ए०।

पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज सरहन ज़िला फ़तहपुर के निवासी थे। इनके पिता पंडित रामसहाय द्विवेदी ठगी तथा डकैती विभाग में दफेदार थे। एक बेर बड़ोदा राज्य में जब डाकुओं का बहुत अधिक उपद्रव हुआ तो वहाँ के महाराज ने अँगरेज़ सरकार से ठगी विभाग के एक निपुण अफ़सर और सात सिपाही भेजने की प्रार्थना की। सरकार ने उक्त द्विवेदीजी को उनकी कार्य-कुशलता के कारण सात सिपाहियों सहित बड़ोदा भेजा, पर वहाँ की पुलिस डाकुओं से मिली हुई थी इसलिये वहाँ द्विवेदीजी और उनके साथी वध कर दिए गए।

मध्यप्रदेश में जबलपुर से प्रायः दो मील पर गढ़ा नामक एक बहुत प्राचीन स्थान है। पंडित रघुवरप्रसाद का जन्म इसी स्थान में माघ बदी ९ संवत् १९२१ को हुआ था। सात वर्ष की अवस्था में इन्होंने घर पर अपने मातामह से साधारण हिंदी की शिक्षा पाई और नौ वर्ष की अवस्था में गढ़ा के मिडिल स्कूल में प्रवेश किया। वहाँ तीसरे दर्जे तक पढ़ने के बाद ये जबलपुर के चर्च मिशन हाई स्कूल में भर्ती हुए। सन् १८८५ ई० में ये एंटेंस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इससे पूर्व इन्हें बराबर छात्रवृत्तियाँ मिला करती थीं। डेढ़ वर्ष तक इन्होंने आगे चल कर जबलपुर कालेज में भी पढ़ा, पर स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के कारण इन्हें पढ़ाई से हाथ धोना पड़ा। अच्छे होने पर ये मिशन स्कूल में २०) रु० मासिक पर शिक्षक नियुक्त हुए। इस

पंडित रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए० ।

बीच में ये प्राइवेट अभ्यास भी करते जाते थे। सन् १८८८ में एफ़० ए० परीक्षा पास करके ये बी० ए० की तैयारी करने लगे। परन्तु इन्हें स्कूल की मास्टरी और अपनी पढ़ाई के अतिरिक्त चार ट्यूशनें भी करनी पड़ती थीं और जबलपुर आने जाने में रोज़ चार पाँच मील का चक्कर लगाना पड़ता था। इससे ये फिर बीमार हो गए। इन्हें अपना अभ्यास फिर बंद करना पड़ा। इस बीच में इन्होंने टीचर्स सर्टिफ़िकेट परीक्षा पास कर ली और छः मास में बी० ए० पास कर लेने की शर्त पर प्रथम अध्यापक नियुक्त हो गए। अंत में बहुत कठिन परिश्रम करके इन्होंने बी० ए० परीक्षा पास ही करली। इसके अनंतर इन्होंने संस्कृत लेकर एम० ए० की परीक्षा पास कर लेने का विचार किया, पर योग्य अध्यापक न मिलने के कारण ये अँगरेज़ी लेकर एम० ए० की तैयारी करने लगे। परंतु दो बेर कठिन पुत्रशोक का सामना करने के कारण इन्हें अपना विचार छोड़ देना पड़ा।

छात्रावस्था से ही ये सभाओं और समाजों में व्याख्यान दिया करते थे। कई बेर ये कांगरेस के डेलिगेट बनाए गए। १० वर्षों तक ये आर्यसमाज के भी मेंबर रहे पर अंत में इनकी श्रद्धा फिर सनातन धर्म पर हो गई। धर्मसंबंधी विचारों के ही न मिलने के कारण इन्होंने मिशन स्कूल की २५ वर्ष की पुरानी नौकरी छोड़ दी और ये अंजुमन हाई स्कूल के हेड मास्टर हो गए। इसके बाद ये हितकारिणी हाई स्कूल के प्रथम असिस्टेंट और फिर आगे चल कर हेड मास्टर हो गए। इनके हाथ में आने से उक्त स्कूल की बहुत उन्नति हुई है। चालीस हज़ार की लागत से उसकी एक इमारत बन गई है। विद्यार्थियों की संख्या भी प्रायः दूनी हो गई है। ये स्कूल में नैतिक और धार्मिक शिक्षा भी देते हैं। शिक्षाविभाग के अफ़सरों ने अपनी सरकारी रिपोर्टों में इनके प्रबंध की अच्छी प्रशंसा की है।

मातृभाषा हिंदी पर विशेष अनुराग होने के कारण सात वर्ष तक ये जबलपुर से निकलनेवाले "शुभचिंतक" के अवैतनिक संपादक रहे। शुभचिंतक के बंद हो जाने पर इन्होंने शिक्षाप्रकाश नामक एक मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका की उपयोगिता देख कर मध्य-प्रदेश की सरकार ने सब स्कूलों में उसकी एक एक प्रति खरीदे जाने की आज्ञा दी। इसका सब प्रकार का स्वत्व इन्होंने हितकारिणी सभा को दे दिया और आप उसके अवैतनिक संपादक रहे। उस पत्रिका का नाम आज कल हितकारिणी है। यह पत्रिका स्कूल-मास्टरों के लिए बहुत उपयोगी है। जिस समय जबलपुर में प्लेग भयंकर रूप से फैला था उस समय इन्होंने वालेंटियर बन कर रोगियों और उनके संबंधियों की बहुत कुछ सेवा और सहायता की थी। गत दिल्ली-दरबार के अवसर पर इन्हें सरकार की ओर से एक सनद (Certificate of Honour) मिली थी।

स्वभाव के ये बहुत शांत, दयालु और मिलनसार हैं। इनका अधिकांश समय सार्वजनिक कामों या विद्याध्ययन में ही व्यतीत होता है। मध्यप्रदेश के हिंदीप्रेमियों तथा सहायकों में आपकी गणना हुए बिना नहीं रह सकती ❀।

❀ अब आप राय साहब बना दिए गए हैं।
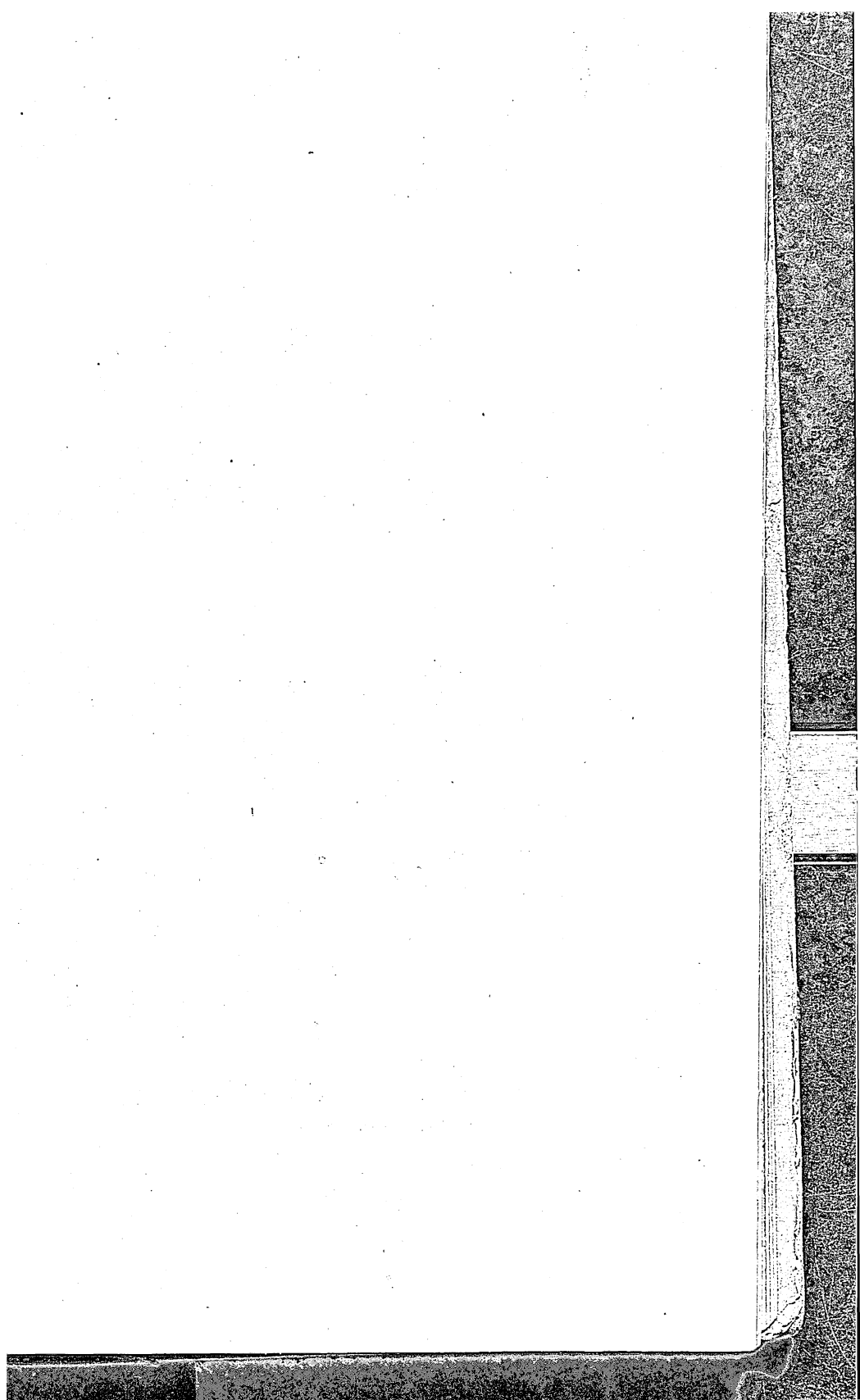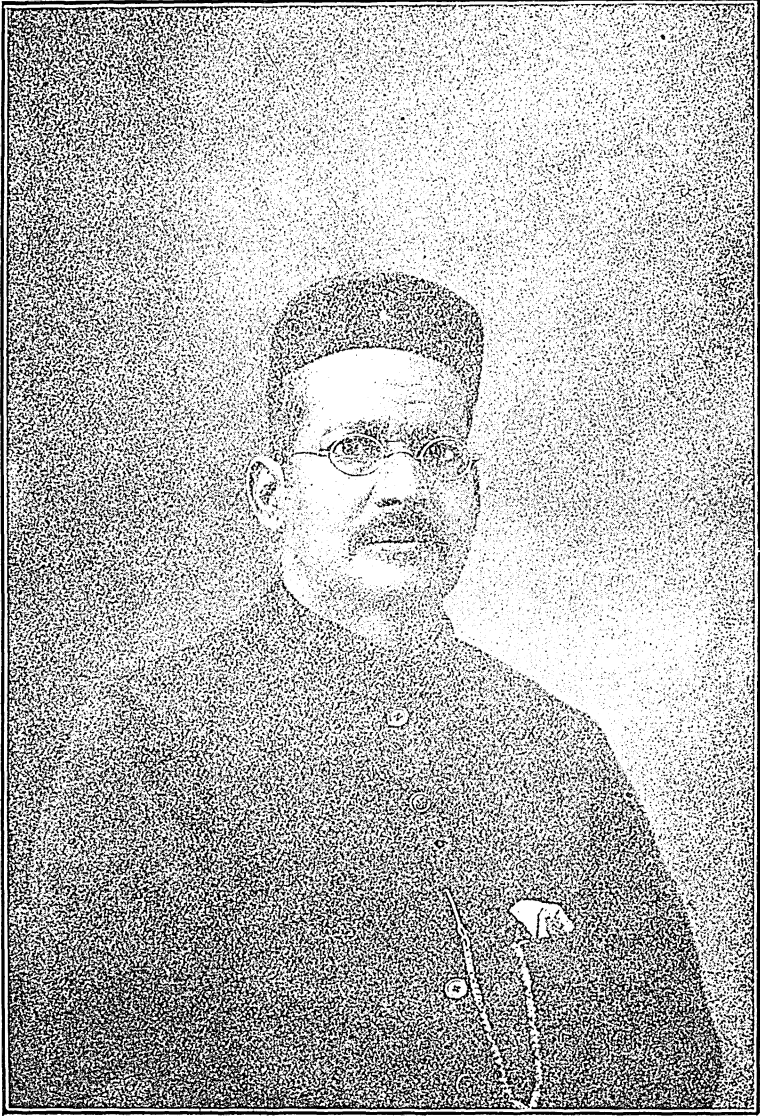
बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री।

(१७) बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री।

बाबू ठाकुरप्रसाद का जन्म सन् १८६५ में, काशी में हुआ था। ये पंजा-जाति वाही खत्री हैं। इनके पिता बाबू विश्वेश्वरप्रसाद काशी के सरकारी ख़ज़ाने में हेडक्लर्क थे। इसके अतिरिक्त इनके आढ़त, बनारसी माल और हुंडी आदि का काम भी होता था। इनके पिता के शिक्षित होने के कारण इनकी शिक्षा का प्रबंध भी बाल्यावस्था से ही किया गया था।

आरंभ में इन्हें साधारण गिनती, हिंदी और फ़ारसी की और फिर अँगरेज़ी की शिक्षा दी गई। गणित और विज्ञान की ओर इनकी विशेष रुचि थी। सन् १८८५ में इन्होंने काशी के गवर्नमेंट कालेज से कलकत्ता युनिवर्सिटी की एंट्रेंस परीक्षा पास की। सन् १८८७ में एफ़० ए० की परीक्षा देने के समय यदि इनके पिता का देहांत न हो जाता तो शायद ये और भी आगे पढ़ते। पिता की मृत्यु के पीछे इन्हें कचहरी में इनकमटेक्स-क्लर्क का काम मिल गया।

कई पदों पर काम करने के बाद ये पुलिस के ख़ज़ानची बना दिए गए। कई वर्ष पीछे ये असिस्टेंट कोर्ट इंस्पेक्टर हो गए। अपने काम से प्रसन्न करके इन्होंने अपने अफ़सरों से कई अच्छे प्रशंसापत्र प्राप्त किए थे।

इसके अनंतर ये मेरठ के थानेदार बनाकर बदल दिए गए। पर

पुलिस का काम इनकी रुचि के विपरीत था। इसलिये इन्होंने उसे छोड़ दिया और पढ़ने लिखने में अपना समय व्यतीत करना आरम्भ किया तथा बँगला और गुजराती आदि भाषाएँ पढ़ीं। हिंदी पर विशेष रुचि होने के कारण ये उसके कई पत्रों में लेखादि लिखने लगे। कुछ दिनों पीछे ये कारमाइकल लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन हो गए और हिंदी में पुस्तकें लिखने लगे। सबसे पहिले इन्होंने दो भागों में "लखनऊ की नवाबी" नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने "विनोद-वाटिका" नामक एक मासिक पत्र भी निकाला जो दो वर्षों तक निकलता रहा। इसी बीच में इन्होंने (१) भूगर्भ-विद्या (२) ज्योतिष और (३) उत्तर-ध्रुव की यात्रा, पर तीन निबंध लिख कर काशी-नागरीप्रचारिणी सभा से चाँदी के तीन पदक प्राप्त किए। अदालतों में नागरी-प्रचार करने के लिये इन्होंने सभा की ओर से कई ज़िलों में दौरा भी किया। सभा द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक कोश में पदार्थ-विज्ञान और रसायन-शास्त्र वाले अंश इन्हीं ने तैयार किए थे। इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित "रामचरित-मानस" के बालकांड का मिलान करने के लिये ये अयोध्या, और अयोध्याकांड के मिलान के लिये राजापुर भी गए थे।

सन् १९०५ में जब काशी में कांग्रेस के साथ प्रदर्शिनी हुई तो इन्होंने वहाँ कपड़ा बुनने का काम सीखा। शक्कर बनाने के काम की ओर भी ये अपना कुछ समय दिया करते थे।

देश के लाभ के लिये ये सर्वसाधारण में व्यावसायिक शिक्षा और व्यावसायिक ग्रंथों के प्रचार की बहुत आवश्यकता समझते हैं। इस-लिये अब इन्होंने इसी ओर ध्यान दिया है। इस संबंध में सबसे पहले इन्होंने "सुनारी" नामक पुस्तक लिखी। दूसरी पुस्तक इन्होंने कपड़े की बुनाई पर "देशी-करघा" नाम की लिखी। इसी बीच में

सरकार ने इन्हें हिंदी में "व्यापारी और कारीगर" नामक पाक्षिक पत्र निकालने के लिये ५००) वार्षिक की सहायता देना स्वीकार किया और फिर इसी का उर्दू संस्करण निकालने के लिये ५००) वार्षिक और बढ़ा दिया। इस उर्दू संस्करण का नाम "सनअत व हिरफ़त मुसालिक मुतहद:" है।

उर्दू के "रिसाला मुफ़ीदुल-मजारईन" के ढँग पर ये हिंदी में भी एक मासिक पत्र निकालने के विचार में थे, पर बीमार पड़ जाने के कारण वह कार्यरूप में परिणत न हो सका। छः मास पीछे अच्छे होने पर इन्होंने "ज़मींदार" नामक एक पत्र निकाला, पर एक वर्ष के अनंतर वह बंद हो गया।

दिन पर दिन कपड़ा सीने की मशीनों का प्रचार बढ़ते देख इन्होंने उसके साधारण दोष दूर करने के विषय पर भी एक पुस्तक छपवाई। बड़े परिश्रम से संग्रह करके इन्होंने "जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष" एक उत्तम और उपयोगी ग्रंथ लिखा। इसके लिये सरकार से इन्हें १०००) की सहायता मिली थी। ये पारिभाषिक शब्दों का भी एक कोष तैयार किया चाहते हैं, जिसके लिये इन्होंने बहुत सा मसाला जमा कर लिया है। "हिंदुस्तान के ढोर ढाँगर, उनकी जातियाँ और गुण" नामक भी एक पुस्तक इन्होंने लिखी है जो अब तक अप्रकाशित पड़ी है। इन्होंने "व्यापारी और कारीगर" नामक एक निज का प्रेस भी खोल रक्खा है।

बाबू ठाकुरप्रसाद बहुत मिलनसार, सरलचित्त और हँसमुख हैं। हिंदी में व्यापार-संबंधी पुस्तकों को लिख कर इन्होंने अच्छी प्रसिद्धि पाई है*।

---

* कुछ समय हुआ, आपका देहांत हो गया।

(१८) लाला भगवानदीन ।

लाला भगवानदीन का जन्म फ़तहपुर ज़िले के बरबर ग्राम में श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९२३ को हुआ था । ये श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ हैं । इनके पूर्वज पहिले रायबरेली में रहते थे, पर ग़दर के समय में वे लोग रामपुर चले गए । इनके पूर्वजों को नवाबी में बख़्शी का ख़िताब मिला था।

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक ये अपनी जन्मभूमि बरबर ही में रहे और वहीं इनकी उर्दू और फ़ारसी की आरंभिक शिक्षा हुई । पर उस समय इनकी माता का देहांत हो जाने के कारण इनके पिता जो बुंदेलखंड में नौकर थे आकर इन्हें अपने साथ ले गए । बुंदेलखंड में ये नौगाँव छावनी में अपने फूफा के पास रहे और वहीं इनको फ़ारसी की विशेष शिक्षा दी गई । चार वर्ष पीछे ये फिर घर लौट आए और वहीं दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे । वहीं अपने दादा से इन्होंने साधारण हिंदी भी पढ़ी । सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फ़तहपुर के हाई स्कूल में भर्ती किए गए जहाँ इन्होंने सात वर्ष में एंट्रेंस परीक्षा पास की । इस बीच में मिडिल पास करने के अनंतर इनका विवाह हो गया था, इसलिये गृहस्थी का भी बोझ इन पर आ पड़ा । तो भी ज्यों त्यों करके ये प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालेज में एफ़० ए० में भर्ती हुए । उस समय इन्हें कायस्थपाठशाला प्रयाग से वृत्ति मिलती थी । इसके अतिरिक्त दो एक जगह प्राइवेट ट्यूशनें भी करनी पड़ती थीं । गृहस्थी के कुल झंझट इन्हीं के सिर पर थे, इसलिये ये कालेज की परीक्षा में

लाला भगवानदीन ।
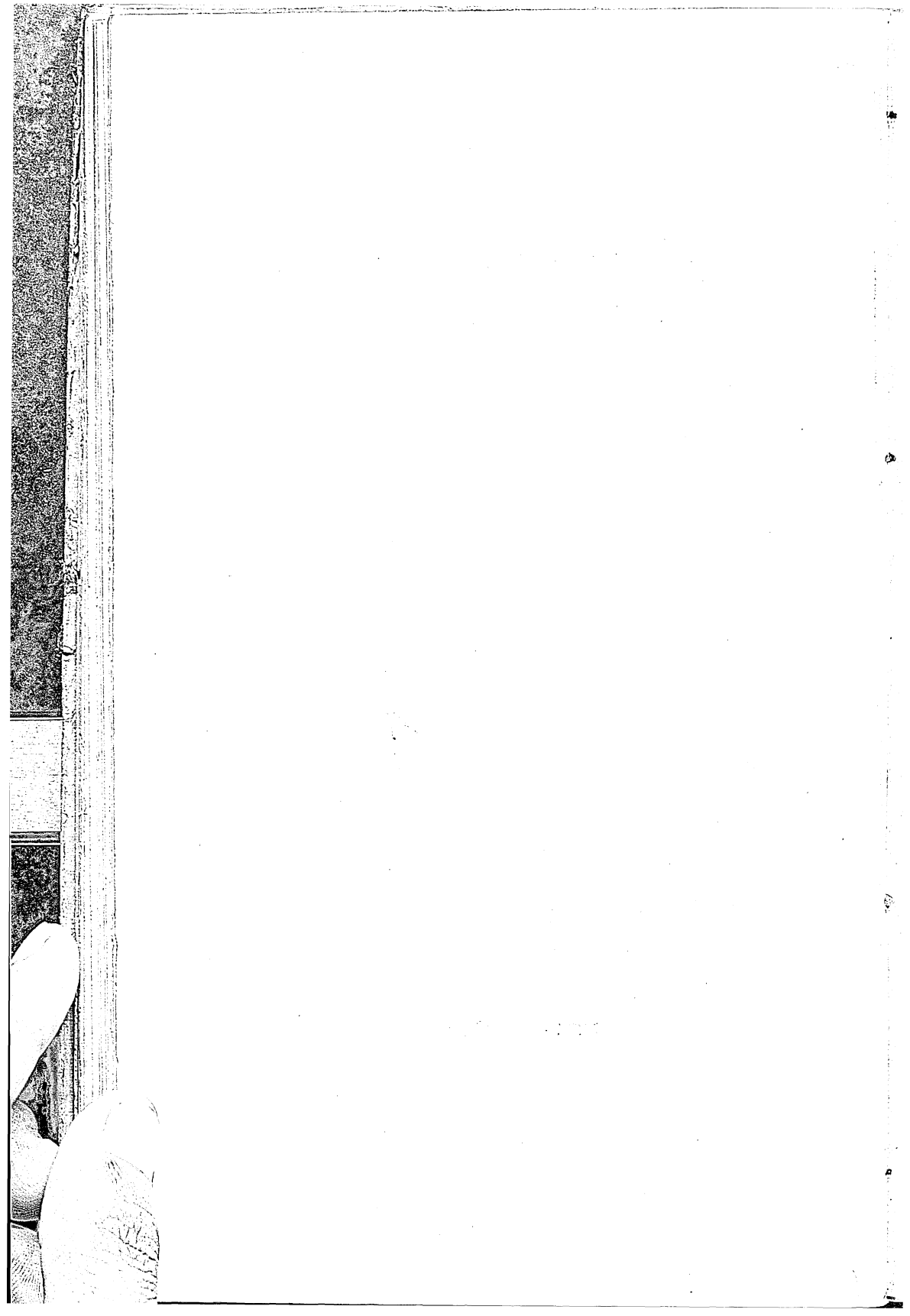
उत्तीर्ण न हो सके। लाचार इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया और वहीं कायस्थपाठशाला में ये शिक्षक नियुक्त हो गए तथा डेढ़ वर्ष तक वहाँ काम करते रहे। इसके पीछे ज़नाना मिशन गर्ल्स हाई स्कूल में ये फ़ारसी के शिक्षक हो गए और छः मास तक वहाँ रहे। फिर ये राज्यस्कूल के सेकेंड मास्टर होकर छत्रपुर (बुंदेलखंड) चले गए और सन् १८९४ से १९०७ तक वहीं रहे। सन् १९०७ में ये काशी के सेंट्रल हिंदू कालेज में उर्दू के टीचर होकर आए। डेढ़ वर्ष पीछे जब नागरीप्रचारिणी सभा का कोश बनने लगा तो ये उसी में आ गए और अब तक उसके सहायक संपादक हैं। बीच में एक बेर जब कोश-कार्यालय काश्मीर गया था तब ये अलग होकर पहले प्रयाग और फिर गया चले गए थे और कोश-कार्यालय के काशी वापस आने पर पुन: उसी में संमिलित हो गए और अब तक वहीं हैं।

इनके दादा बड़े भक्त थे। इनके आज्ञा अनुसार ये उन्हें नित्य तुलसी-कृत रामायण सुनाया करते थे। वहीं से इनकी रुचि हिंदी की ओर बढ़ी। १९ वर्ष की अवस्था में ये एक बेर अपने पिता के साथ हरिद्वार गए थे और वहाँ दो मास तक रहे थे। उसी समय में इन्होंने "कृष्ण, चौसठिका" नाम की एक कविता बनाई थी। इसके बाद ये और भी फुटकर कविता करते थे। छत्रपुर में ये अवकाश के समय बाबू जगन्नाथप्रसाद की लाइब्रेरी की पुस्तकें पढ़ा करते थे। वहाँ इन्होंने बुंदेल-खंड के प्राचीन कवियों की बहुत सी कविताएँ पढ़ीं। इसके पीछे वहीं के पंडित गंगाधर व्यास से अलंकार तथा काव्य के कुछ नियम इन्होंने सीखे। तदुपरांत इन्होंने शृंगारशतक, शृंगारतिलक तथा रामायण के दोहों पर कुंडलियों की रचना की। इसके सिवा छत्रपुर में इन्होंने कविसमाज और काव्यलता नामक दो सभाएँ स्थापित कीं जो अब तक वर्तमान हैं। साथ ही भारतीभवन नामक एक पुस्तकालय भी खोला

था। उस समय ये रसिकमित्र, रसिकवाटिका और लक्ष्मीउपदेशलहरी में फुटकर कविताएँ और लेख भी भेजा करते थे। सन् १९०५ में लक्ष्मीउपदेशलहरी के सम्पादक देवरी-निवासी श्रीयुत मंजुसुशील का देहांत हो गया। मरने से पूर्व वे लक्ष्मी के अध्यक्ष को संमति दे गए थे कि वे लाला भगवानदीन को ही लक्ष्मी का संपादक बनावें। तदनुसार लक्ष्मी का संपादन-कार्य आपके हाथ में आया जिसे अब तक ये योग्यता-पूर्वक कर रहे हैं। इन्होंने भक्तिभवानी नाम की एक कविता लिखी थी जिस पर कलकत्ते की बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी से इन्हें एक स्वर्णपदक मिला था। "रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ?" शीर्षक निबंध पर इन्हें १००) पुरस्कार मिला था। काशी में आकर इन्होंने "धर्म और विज्ञान", "वीरप्रताप", "वीरबालक" और "वीरक्षत्राणी" नामक पुस्तकें लिखीं। जब ये गया में थे तो इन्होंने बहुत सी पाठ्य पुस्तकों की कुंजियाँ बनाई थीं।

इन्होंने अपनी पहली स्त्री बुंदेलाबाला को पढ़ा लिखा कर सुशिक्षिता बनाया था और उसे कविता भी सिखलाई थी। बुंदेला-बाला की कई कविताएँ सामयिक पत्रों में निकली भी थीं। उसका देहांत हो जाने पर छत्रपुर में इन्होंने दूसरा विवाह किया था पर काशी आने पर वह स्त्री भी मर गई। सन् १९१२ में इन्होंने तीसरा विवाह किया है। इस समय इनके केवल एक कन्या है, जिसका विवाह हो चुका है।

लाला भगवानदीन का स्वभाव मिलनसार है। ये इतने परिश्रमी हैं कि दिन दिन भर निरंतर काम में लगे रह सकते हैं*।

---

* इस समय आप काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं।
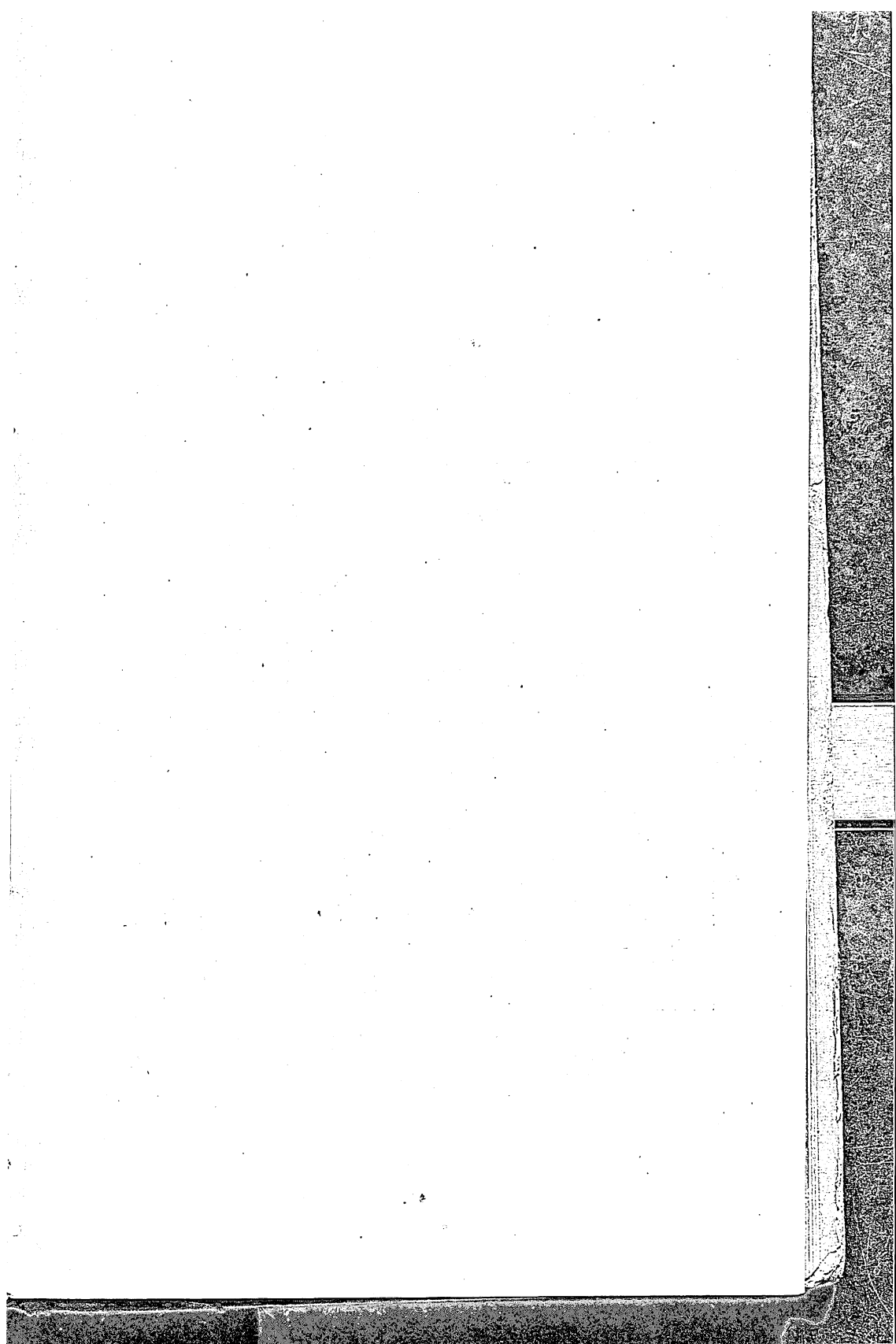
बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर)।

(१६) बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०।

बाबू जगन्नाथदास का जन्म काशी में भादों सुदी ५ संवत् १६२३ को हुआ था। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पूर्वपुरुषों का आदिस्थान ज़िला पानीपत में था और वे लोग मुग़ल राज्य में ऊँचे ऊँचे सरकारी पदों पर काम करते थे। इनके परदादा लाला तुलाराम जहाँदारशाह के दरबार में रहते थे। वे जहाँदारशाह के साथ ही एक बेर काशी आए और तब से यहीं रहने लगे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता बाबू पुरुषोत्तमदास फ़ारसी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। फ़ारसी तथा हिंदी काव्य से उन्हें बहुत प्रेम था और उनमें वे अच्छा अधिकार रखते थे। उनके पास प्रायः फ़ारसी और हिंदी के अच्छे अच्छे कवियों का जमघट रहता था। उन्हीं की देखादेखी हमारे चरितनायक को भी काव्य में रुचि उत्पन्न हुई और ये उर्दू में शायरी करने और गज़लें कहने लगे। धीरे धीरे इनकी भाषा-संबंधी रुचि बदल गई और हिंदी पर इनका अनुराग उत्पन्न हुआ, तब से ये इसी भाषा में कविता करने लगे। आरंभ से अंत तक इनकी सारी शिक्षा काशी में ही हुई। सन् १८६२ में काशी में ही इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। उस समय इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी थी। थोड़े दिनों पीछे इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी की। वहाँ ये मुहत-

मिम ख़ज़ाना के पद पर नियुक्त हुए। दो वर्ष तक इन्होंने वहाँ योग्यता-पूर्वक कार्य किया। पर वहाँ का जल-वायु इनके अनुकूल नहीं हुआ और ये प्राय: अस्वस्थ रहने लगे। इसलिये इन्होंने वह पद छोड़ दिया और काशी चले आए। यहाँ ये बहुत दिनों तक यों ही रहे। इसके अनंतर सन् १९०२ ई० में ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए और उनके मृत्युकाल (नवंबर सन् १९०६) तक उसी पद पर रहे। श्रीमान् अयोध्यानरेश का देहांत हो जाने पर इनकी योग्यता और कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। तब से ये उसी पद पर हैं और बड़ी योग्यतापूर्वक अपना कार्य कर रहे हैं। बाबू जगन्नाथदास हिंदी-काव्य-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता और व्रजभाषा के उच्च श्रेणी के कवि हैं। ये प्रसिद्धि से बहुत दूर भागते हैं, इसलिये इनकी वास्तविक योग्यता से बहुत ही परिमित लोग परिचित हैं। छंदों, चौपाइयों और दोहों के विलक्षण अर्थ करने में ये बड़े ही निपुण हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस और भावपूर्ण होती है और कभी कभी बड़े बड़े प्राचीन कवियों की कविता से टक्कर लेती है। स्वभाव के ये बड़े ही सरल, मिलनसार और विनोदप्रिय हैं। अब तक इन्होंने हिंडोला, समालोचनादर्श, साहित्यरत्नाकर, घनाक्षरी नियमरत्नाकर और हरिश्चंद्र नामक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है और चंद्रशेखर के हम्मीरहठ, कृपाराम की हिततरंगिणी और दूलह कवि के कंठाभरण का संपादन किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भी अनेक फुटकर कविताएँ की हैं जिनमें से अधिकांश अप्रकाशित हैं। इन्होंने कई सहयोगियों के साथ "साहित्यसुधानिधि" नाम का एक मासिक पत्र कई वर्षों तक निकाला था। इसमें प्राचीन तथा नवीन ग्रंथ छपते थे। इसमें इनके कुछ काव्य और दोहा—नियम प्रकाशित हुए थे, जिन्हें डाक्टर ग्रियर्सन ने

अपनी लालचंद्रिका तक में उद्धृत किया था। दुःख का विषय है कि रत्नाकरजी अब एक प्रकार मातृभाषा की सेवा से विरक्त से हो रहे हैं।

---

(२०) बाबू गोपालराम।

बाबू गोपालराम का जन्म ग़ाज़ीपुर ज़िले के बारा नामक ग्राम में संवत् १९२३ पौष बदी ५ को हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू रामनारायण था। इनकी बाल्यावस्था में ही इनके माता पिता गहमर जा बसे थे। वहीं के स्कूल में इनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई। उस समय इन्हें साधारण उर्दू, हिंदी और अँगरेज़ी की शिक्षा मिली थी। इन्हीं दिनों इन्हें कविवचनसुधा, श्रीहरिश्चंद्रचंद्रिका और सारसुधानिधि आदि पत्रों के पढ़ने का शौक़ हुआ। अपने शिक्षागुरु बाबू रामनारायणसिंह (अब सब-डिपटी इंस्पेक्टर आफ् स्कूल्स, मिर्ज़ापुर) को उक्त पत्रों में लेखादि लिखते देख इन्हें भी लेखों द्वारा समाचारपत्रों की सेवा करने की इच्छा हुई। सन् १८८४ में जब ये पटना के नार्मल स्कूल में भर्ती हुए तो वहाँ के सरकारी पुस्तकालय में इन्हें और भी पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ने के लिये मिलने लगीं तथा मातृभाषा पर इनका अनुराग और भी बढ़ने लगा। उन्हीं दिनों बलिया ज़िले में बंदोबस्त का काम हो रहा था जिसमें एक अच्छे नागरी लिखनेवाले की आवश्यकता थी। नार्मल स्कूल से हेड मास्टर ने इन्हें वहाँ भेजा। उन दिनों वहाँ के कलेक्टर बड़े हिंदीप्रेमी थे। उन्होंने आग्रहपूर्वक स्वर्गीय बाबू हरिश्चंद्र को वहाँ बुलाया था। वहीं देवाक्षरचरित्र, सत्यहरिश्चंद्र और अंधेरनगरी का अभिनय भी हुआ। कलेक्टर साहब अभिनय से बहुत प्रसन्न हुए थे। बाबू गोपालराम ने भी वे अभिनय

बाबू गोपालराम ।
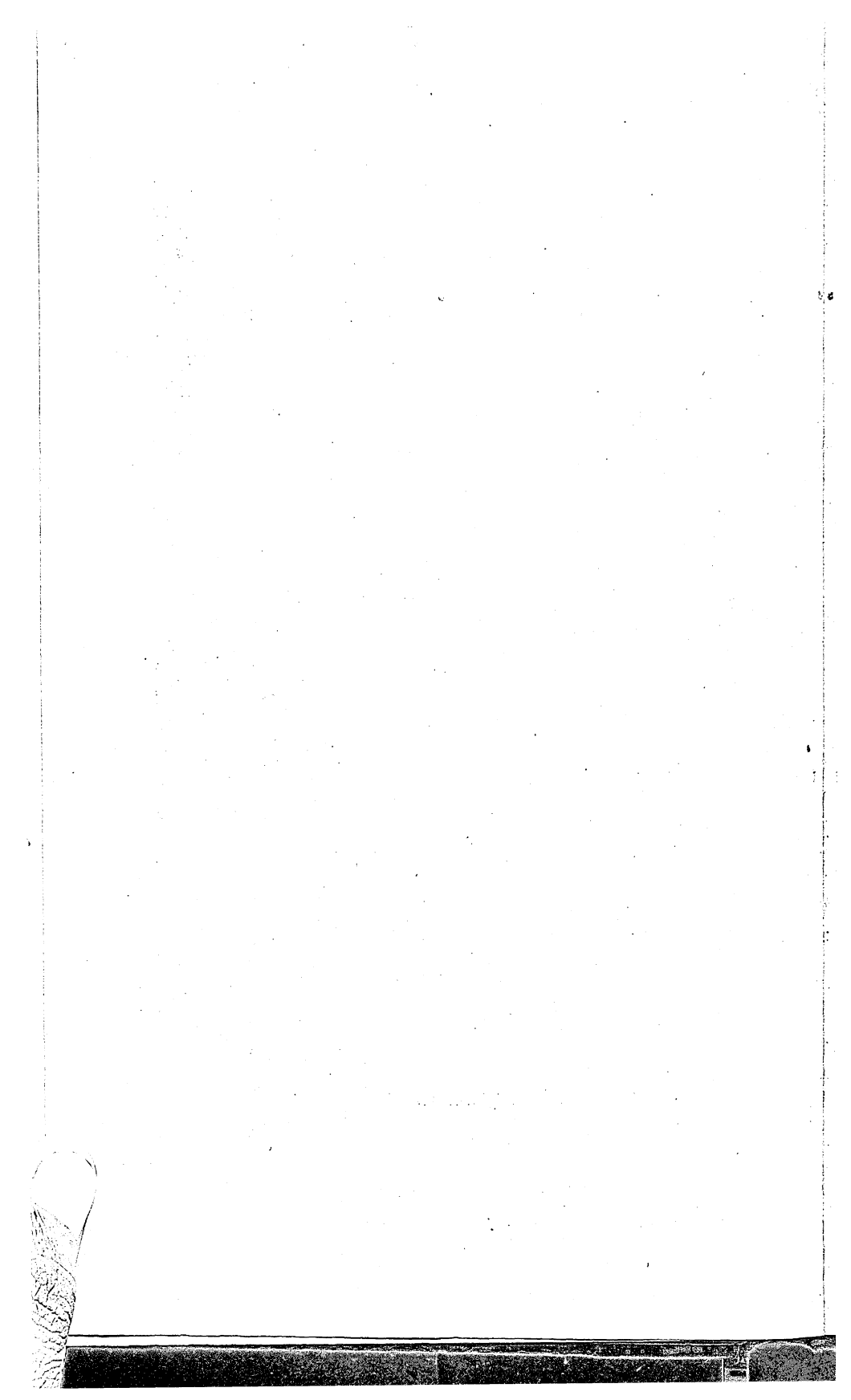
देखे थे और उनका उन पर बहुत विलक्षण प्रभाव पड़ा था। वहीं इन्होंने हिंदी लिखने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। बंदोबस्त का काम समाप्त होने पर पटने लौट कर इन्होंने सारसुधानिधि और हिन्दोस्थान आदि पत्रों में लेख लिखना आरंभ कर दिया। उसी अवसर पर इन्हें कुछ दिनों तक महाराज स्कूल बेतिया के हेड पंडित का काम करना पड़ा था। वहाँ भी इन्हें हिंदी की चर्चा करनेवाले साथी मिल गए थे। सन् १८८७ में नार्मल स्कूल की अंतिम परीक्षा पास करके दो वर्षों तक समाचारपत्रों में लेखादि लिखने के अतिरिक्त इन्होंने और कोई काम नहीं किया। सन् १८८९ के नवंबर मास में ये रोहतासगढ़ के गवर्नमेंट स्कूल में हेड मास्टर हो गए। एक वर्ष के अंदर ही बंबई के श्रीवेंकटेश्वर प्रेस के अध्यक्ष ने इन्हें अपने यहाँ बुला लिया और ये सरकारी नौकरी छोड़ कर वहाँ चले गए। पर वहाँ भी ये अधिक दिनों तक न रह सके। दैनिक हिंदोस्थान के संपादन में सहायता देने के लिये राजा रामपालसिंह के बुलाने पर इन्हें कालाकाँकर जाना पड़ा। उस समय वहाँ एक नवरत्नसभा थी जिसमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित राधारमण चौबे, चौबे गुलाबचंद्र, बाबू बालमुकुंद गुप्त आदि सज्जन संमिलित थे। ऐसे सुयोग्य लेखकों और कवियों के साथ रह कर इनका हिंदीप्रेम और भी दृढ़ हो गया। इन्होंने अन्य भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद करके मातृभाषा हिंदी का भंडार भरना निश्चय किया। इसी अभिप्राय से इन्होंने वहाँ बँगला भाषा सीखी और 'बभ्रुवाहन', 'देशदशा' और 'विद्याविनोद' ये तीन नाटक लिख कर पुस्तकाकार छपवाए। सौभद्रा नामक एक उपन्यास भी वहीं लिखा गया था।

कई कारणों से कालाकाँकर में लोगों से इनकी नहीं बनी और सन् १८९१ में "व्यापारसिंधु" का संपादन करने के लिये ये फिर

बंबई चले गए। एक मास तक "व्यापारसिंधु" का संपादन करके ये "भाषाभूषण" नामक मासिक पत्र का संपादन करने लग गए। छः मास पीछे पत्र के मालिकों में अनबन होने के कारण भाषाभूषण बंद हो गया। उसी समय इन्होंने बँगला से यौवनयोगिनी और दृश्यकाव्य चित्रांगदा का हिंदी अनुवाद करके प्रकाशित कराया। भाषाभूषण के बंद हो जाने पर ये मंडला के प्रसिद्ध ताल्लुकेदार रायबहादुर चौधरी जगन्नाथप्रसाद के पास चले गए। वहाँ इन्होंने माधवीकंकण और भानुमती नामक पुस्तकें हिंदी में अनुवादित कीं, होली के अवसर पर वसंतविकाश नामक कविता लिखी और "नये बाबू" नामक एक और छोटी पुस्तक लिखी। ये चारों पुस्तकें उक्त चौधरी साहब ने छपवाई थीं। मंडला से ही ये मेरठ के "साहित्यसरोज" का भी संपादन करते थे। वहीं से इन्होंने पहिले पहिल गुप्तकथा नामक जासूसी ढँग का मासिक पत्र निकाला, लेकिन उचित सहायता के अभाव से वह बंद हो गया। मंडला से ये जबलपुर और जबलपुर से पाटन गए। १८९७ में ये फिर श्रीवेंकटेश्वर समाचार के सहकारी संपादक होकर बंबई चले गए। वहीं इन्होंने देवरानी जेठानी, बड़ा भाई, सास पतोहू, दो बहन, गृहलक्ष्मी आदि स्त्रीशिक्षासंबंधी कई पुस्तकें अनुवादित कीं, जो श्रीवेंकटेश्वर प्रेस में ही छपीं। सन् १८९९ में इन्होंने वहाँ से छुट्टी ले ली। उसी समय ये भारतमित्र के स्थानापन्न संपादक हुए। सन् १९०० से इन्होंने गहमर से जम कर "जासूस" नामक मासिक पत्र निकाला जो अब तक निकलता है। इसमें आज तक छोटे बड़े सब मिला कर कोई १०० अनुवादित उपन्यास निकल चुके हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से उपन्यास लिख कर इन्होंने अन्य प्रकाशकों द्वारा छपवाए हैं। इन दिनों ये होमियोपैथिक चिकित्सा का भैषज्यतत्त्व (Materia Medica) और चिकित्साप्रणाली लिख रहे हैं।

अब इनकी पुस्तकों के पाठकों की संख्या अच्छी हो गई है और इनकी पुस्तकों का प्रचार भी अच्छा होने लगा है। भाषा के विषय में ये कहा करते हैं "भाषा ऐसी नहीं होनी चाहिए कि पढ़नेवालों को अभिधान उलटते उलटते पसीना आ जाय"। इसी कारण ये साधारण से साधारण, यहाँ तक कि कभी कभी ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग कर देते हैं।

(२१ कुँवर हनुमंतसिंह रघुवंशी।

बुलंदशहर ज़िले में औरंगाबाद चाँदौख बहुत प्राचीन स्थान है। किसी समय वहाँ सुप्रसिद्ध राजा चंद्र की राजधानी थी। औरंगज़ेब के समय में बड़गूजर राजपूतों ने उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया था। बड़गूजर-वंश राजपूतों का पुराना गौरवशाली वंश है। किसी समय ढूँढार, राजोड़, राजगढ़ और अलवा इन्हीं बड़गूजरों के अधिकार में थे।

ठाकुर हनुमंतसिंहजी का जन्म उसी बड़गूजर-वंश में चाँदौख में फाल्गुन शुक्ला २ संवत् १९२४ को हुआ था। आरंभ में इन्होंने अपने ही गाँव में हिंदी और उर्दू की शिक्षा पाई। इसके अनंतर १२ वर्ष की अवस्था में ये बुलंदशहर के हाई स्कूल में अँगरेज़ी शिक्षा पाने के लिये भर्ती हुए। वहाँ से मिडिल पास करके ये आगरे आए, जहाँ इन्होंने आगरा कालिजिएट स्कूल में एंट्रेंस तक शिक्षा पाई।

इनके पिता ठाकुर गिरिवरसिंहजी सामाजिक सिद्धांतों के अनुयायी और हिंदी के बड़े प्रेमी थे। उनके पास पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। समाचारपत्रादि भी उनके पास बहुत आते थे। इसीलिये बाल्यावस्था से ये भी सामाजिक सिद्धांत मानने लगे और छात्रावस्था में ही हिंदी में लेखादि लिखने लग गए। उसी समय इन्होंने क्षत्रिय-कुलतिमिरप्रभाकर और सतीचरित्रनाटक नामक दो अच्छी पुस्तकें

कुँवर हनुमंतसिंह रघुवंशी ।
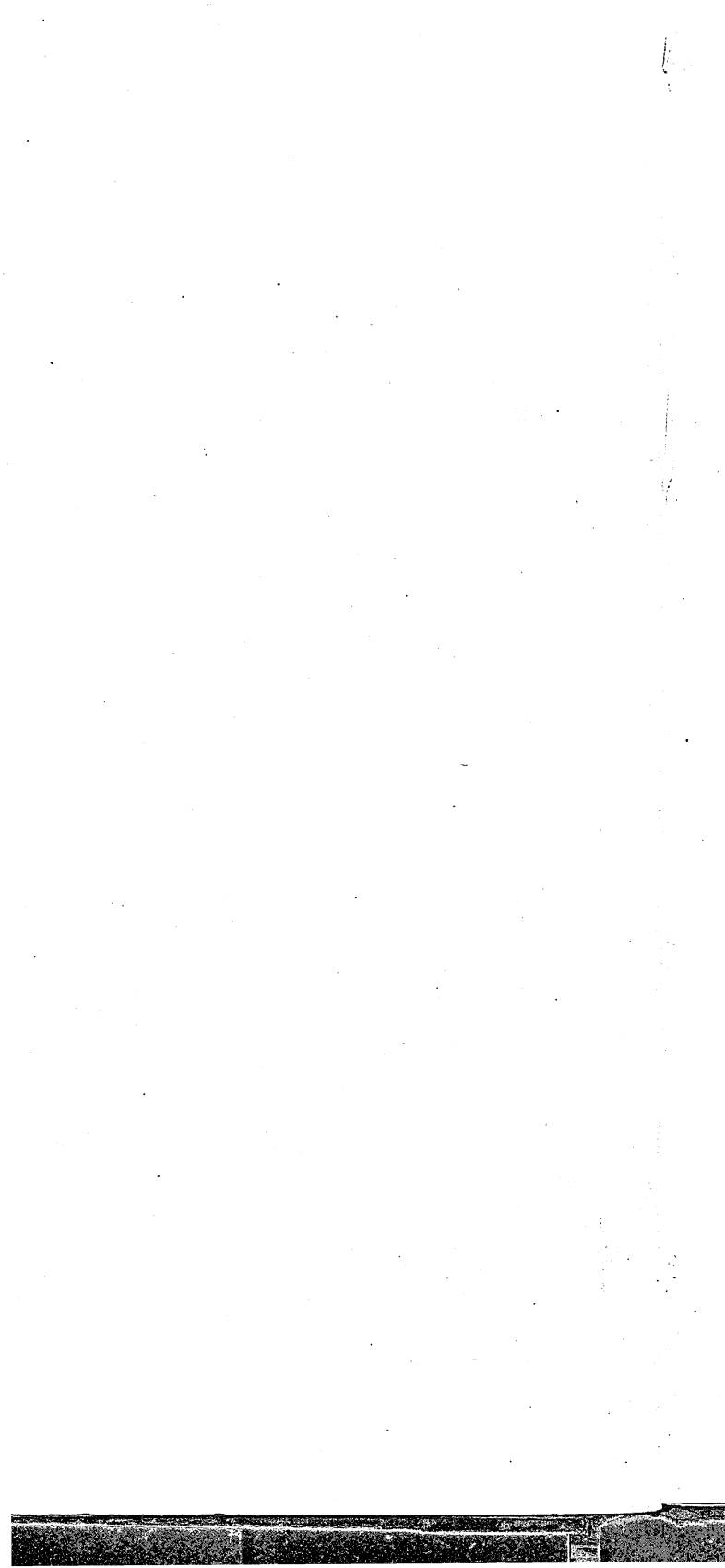
लिखी थीं। स्कूल छोड़ने के कुछ ही दिनों पीछे इन्होंने चंद्रकला उपन्यास लिखा। इनके स्वजाति-विषयक कुछ हिंदी लेखों से प्रसन्न होकर राजा साहब भिनगा ने इन्हें अपनी रियासत में एक अच्छा पद दिया। सन् १८८२ से ८६ तक भिनगा और काशी में रह कर इन्होंने अपनी योग्यता से राजा साहब भिनगा को बहुत प्रसन्न और संतुष्ट किया। इसके अनंतर स्वतंत्र जीविका निर्वाह करने के विचार से ये आगरे चले गए और वहाँ इन्होंने "राजपूत एंगलो ओरिएंटल प्रेस" खोला। क्षत्रिय-महासभा का मुखपत्र "राजपूत" (पाक्षिक) इसी प्रेस से निकलता है और कुँवर हनुमंतसिंह ही उसका संपादन करते हैं। इसके अतिरिक्त ये स्वयं भी "स्वदेश बांधव" नामक मासिक पत्र निकालते हैं। अब तक इन्होंने हिंदी में बीसों पुस्तकें लिख डाली हैं; जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—

महाभारतसार, मेवाड़ का इतिहास, सीताजी का जीवनचरित, भारत-महिलामंडल—दो खंड, रमणीरत्नमाला, जीवनसुधार, वीर बालक अभिमन्यु, गृहशिक्षा, माता का पुत्री को उपदेश, बालहित और बाल-विवाहविरोध, विनोद, वनिताहितैषिणी, महात्मा भरत, आदि ।

इनमें से अधिकांश पुस्तकें मुद्रित हो चुकी हैं और उनका प्रचार भी अच्छा है।

स्वभाव के ये बहुत मिलनसार और सरल हैं। गत १६ वर्षों से ये काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के सभासद हैं। अँगरेज़ी, उर्दू और हिंदी के अतिरिक्त ये बँगला और गुजराती भी जानते हैं। जिस समय राजा साहब भिनगा के यहाँ कार्य करने के कारण ये काशी में रहते थे उस समय काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की प्रारंभ की अवस्था में इन्होंने उसकी बहुत कुछ सहायता की थी और ये सदा उसकी उन्नति में तत्पर रहते थे ।

हिंदी भाषा की सेवा करने के अतिरिक्त ये बहुत से सार्वजनिक कार्यों की भी अच्छी सहायता करते हैं। कई वर्षों तक ये क्षत्रिय-महासभा के ज्वाइंट सेक्रेटरी और आगरा आर्यसमाज के उपसभापति रह चुके हैं। अभी हाल में आपने अपने उद्योग और मित्रों की सहायता से आगरे में नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित की है जिसके ये आज-कल उपसभापति हैं। आगरे में पब्लिक लाइब्रेरी का अभाव देख कर, वहाँ इन्होंने एक पब्लिक लाइब्रेरी स्थापित कराई है। उसकी प्रबंधकारिणी कमेटी के ये उपसभापति भी हैं। आगरे के बलवंत राजपूत हाई स्कूल के ये ट्रस्टी हैं। इनका अधिकांश समय सार्वजनिक कार्यों या मातृभाषा की सेवा में ही व्यतीत होता है।
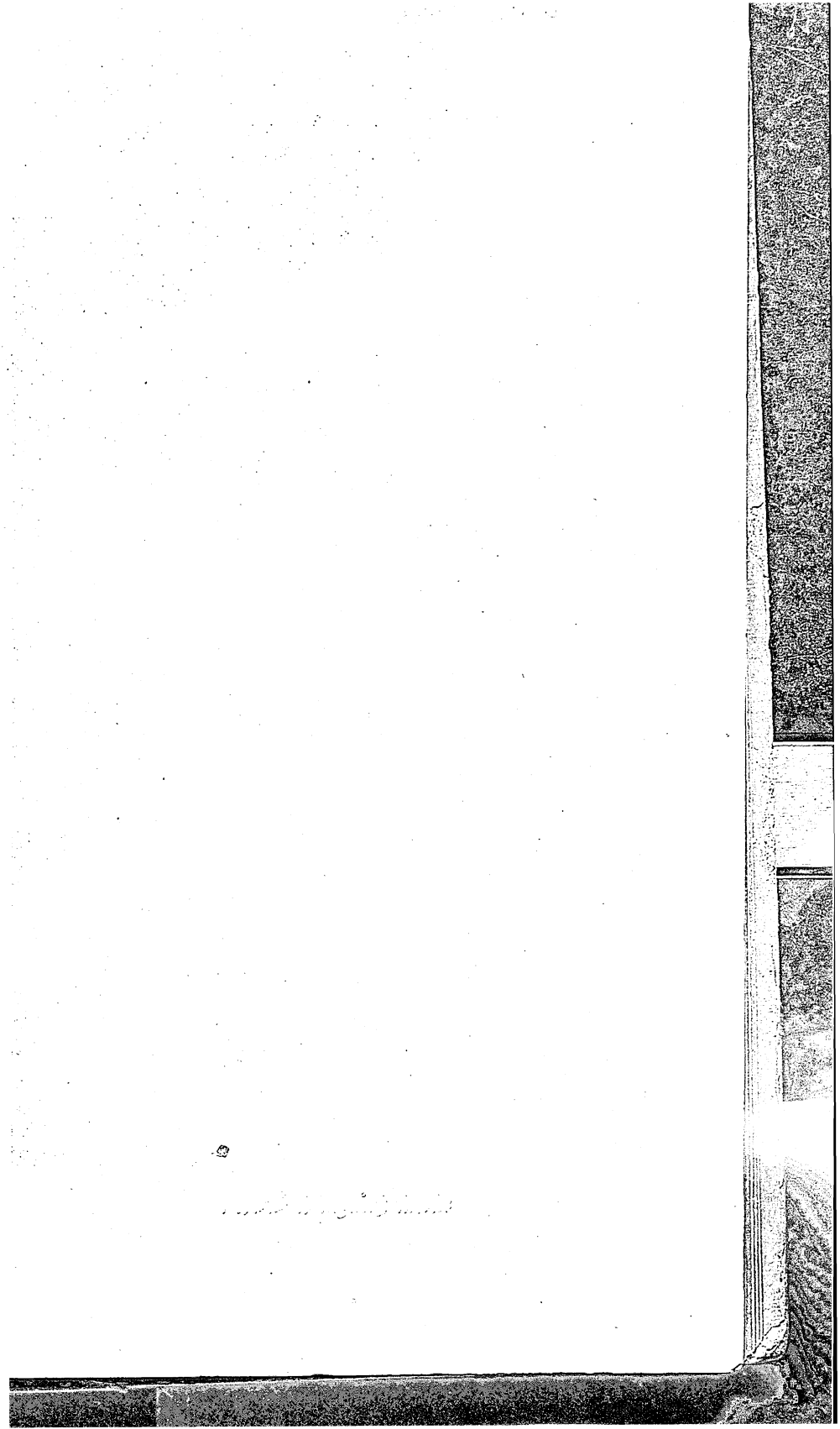
श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरी ।

(२२) श्रीमती हेमंतकुमारी चौधरी ।

पंजाब में बाबू नवीनचंद्र राय एक बड़े नामी आदमी हो गए हैं । वे बहुत दिनों तक पंजाब युनिवर्सिटी के असिस्टेंट रजिस्ट्रार और लाहोर के ओरिएंटल कालेज के प्रिंसिपल थे । सन् १८७०-८० में पंजाब के प्रायः सभी सार्वजनिक कामों के वे ही मुखिया थे । वे ब्रह्मसमाजी और स्त्रीशिक्षा के बड़े पक्षपाती थे । श्रीमती हेमंतकुमारी चौधुरी का जन्म उन्हीं के घर लाहोर में दूसरे आश्विन संवत् १९२५ (सितंबर सन् १८६८) को हुआ था । अँगरेज़ी की प्रारंभिक शिक्षा के लिये ये आगरे के रोमन केथलिक कनवेंट में भेजी गईं, परंतु थोड़े दिनों में इन पर क्रिस्तानी धर्म का बहुत अधिक प्रभाव पड़ते देख इनके पिता इन्हें वहाँ से ले आए, और लाहोर के क्रिश्चियन गर्ल्स स्कूल में भर्ती करा कर घर पर स्वयं ही धार्मिक शिक्षा देने लगे । बचपन ही में इनकी माता का देहांत हो गया था, इसलिये पिता पुत्री में बहुत अधिक स्नेह हो गया और प्रायः सभी सभा-समितियों में ये अपने पिता के साथ जाने लगीं । लाहोर के गर्ल्स स्कूल की शिक्षा समाप्त कर चुकने पर ये कलकत्ते के बेथून स्कूल में भेज दी गईं और वहाँ से लौटने पर २ नंवबर १८८५ को सिलहट के श्रीयुत राजचंद्र चौधुरी के साथ ब्रह्मसमाज के नियमों के अनुसार इनका विवाह कर दिया गया। विवाह के अनंतर ये अपने पति के साथ शिलांग (आसाम) चली गईं ।

लाहोर में बाल्यावस्था में ही इन्होंने नीतिशिक्षा के प्रचार के लिये एक स्त्रीसमाज की स्थापना की थी। शिलांग में भी ये ख़ाली न बैठी रहीं और स्त्रीशिक्षा के प्रचार के लिये जहाँ तक हो सका उद्योग करती ही रहीं। इसके अनंतर इनके पति मध्यभारत की रतलाम रियासत में नौकर होकर गए और ये उनके साथ १८८७ से ८९ तक वहाँ रहीं। वहाँ ये रतलाम की स्वर्गीया महारानी की अवैतनिक शिक्षिका हो गई। वहीं से इन्होंने हिंदी में "सुगृहिणी" नामक मासिक पत्रिका निकाली, जो कई वर्षों तक अच्छी तरह चली। शिलांग लौटने पर वह बंद हो गई। शिलांग में इन्होंने फिर महिलासमिति का काम आरंभ किया और बहुत उद्योग करके वहाँ के लिये सरकार से एक स्त्री-डाक्टर की मंज़ूरी और नियुक्ति कराई। सन् १८९९ में पति की बदली हो जाने पर ये सिलहट चली गई। वहाँ भी इन्होंने चीफ़ कमिश्नर से प्रार्थना करके कन्याओं के लिये एक स्कूल खुलवाया। इस स्कूल के लिये श्रीमती चौधुरी को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त वहाँ इन्हें और भी अनेक काम करने पड़ते थे। इन्होंने बँगला में "अन्तःपुर" नामक एक मासिक पत्र निकाल रक्खा था। उस पत्र के संपादन और ब्रह्मसमाज और महिला-समिति के अधिवेशन करने के अतिरिक्त ये और भी कई सभाएँ आदि करके स्त्रियों को कई प्रकार की नीतिशिक्षा दिया करती थीं। कन्याओं के स्कूल में इन्हें शिक्षिका का काम भी करना पड़ता था। सरकार ने इन्हें अच्छा वेतन देकर स्कूल को पूर्ण रूप से इनके अधिकार में कर देना चाहा। परंतु इन्होंने सार्वजनिक कार्य के विचार से वेतन लेना धन्यवादपूर्वक अस्वीकार कर दिया। नवंबर १९०६ में ये सिलहट में बहुत बीमार हो गई थीं। उसी समय ये पंजाब की पटियाला रियासत से वहाँ के विक्टोरिया हाई स्कूल के सुपरिंटेंडेंट का काम करने के लिये बुलाई

गईं । बीमारी से अच्छी होने पर जनवरी १९०७ में ये पटियाला चली गईं । यह स्कूल १२ दिसम्बर १९०६ को पंजाब के तत्कालीन छोटे लाट की पत्नी श्रीमती लेडी रिवाज द्वारा खोला गया था। उस समय उसमें केवल ५०-६० लड़कियाँ थीं । श्रीमती हेमंतकुमारी के उद्योग और अध्यवसाय से उस स्कूल ने बहुत कुछ उन्नति कर ली और लड़कियों की संख्या बढ़ कर ३०० हो गई । पटियाले में भी इन्होंने कन्याओं, शिक्षिकाओं और साधारण स्त्रियों की कई सभाएँ स्थापित कीं । वहीं इन्होंने आदर्श माता, माता और कन्या, नारिपुष्पावली और हिंदी बँगला प्रथम शिक्षा नामक चार पुस्तकें लिखीं। पंजाब चीफ़ कोर्ट के अवसर प्राप्त जज सर प्रतुलचंद्र चटर्जी ने आदर्श माता की भूमिका लिखते हुए इनकी बहुत प्रशंसा की है। उस पुस्तक के लिए पंजाब सरकार से इन्हें २००) पुरस्कार भी मिला है।

श्रीमती हेमंतकुमारी को इस समय १०-१२ पुत्र और कन्याएँ हैं। इनका सबसे बड़ा लड़का सरकारी छात्रवृत्ति पाकर यूरोप में पढ़ रहा है और सबसे बड़ी लड़की बी० ए० की परीक्षा के लिये तैयार हो रही है।

श्रीमती हेमंतकुमारी को बड़ी बड़ी सभा-समितियों में वक्तृता देने का भी बहुत अच्छा अभ्यास है । गत वर्ष थीस्टिक कानफ़रेंस (All Indian Theistic Conference) तथा सोशल कानफ़रेंस के कई अधिवेशनों में कई बेर इन्होंने अच्छी वक्तृता दी है।

हिंदी के लिये यह गौरव की बात है कि अपने पिता की भाँति एक बंगमहिला हिंदी भाषा की सेवा में तत्पर है।

———

(२३) पंडित राजाराम वासिष्ठ ।
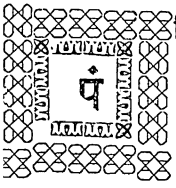
पंडित राजारामजी पंजाब के क़िला मीहाँसिंह नामक ग्राम के निवासी हैं। इनका गोत्र वासिष्ठ और प्रसिद्ध जाति लक्षणपाल है। इनके पूर्वजों का संबंध पंजाब के प्रसिद्ध यालवंश से है। इनका जन्म संवत् १९२७ विक्रमी ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा का है।

अपने ग्राम में किसी पाठशाला के न होने के कारण इनके पिता संत पंडित सूबामलजी ने ही आरंभ में इन्हें हिंदी की साधारण शिक्षा दी। छः वर्ष की अवस्था में ये मदरसे में बैठाए गए। विद्या में रुचि और बुद्धि तीव्र होने के कारण चार ही वर्ष में इन्होंने प्राइमरी पास करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। इन्हीं दिनों इन्होंने एक अँगरेज़ो पढ़े नवयुवक क्षत्रिय को ईसाई होते देख अँगरेज़ी पढ़ना छोड़ फिर संस्कृत का अध्ययन आरंभ किया। इनके गुरु के आज्ञानुसार इनके सब सहपाठी संध्योपासन करते थे। उन्हीं के आदेश से इन्होंने संध्या का हिंदी अनुवाद किया और उसकी तीन प्रतिलिपियाँ अन्य विद्यार्थियों के लिए पाठशाला में रख दीं। १६ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। उसी अवसर पर सत्यार्थप्रकाश को देख इनकी रुचि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के पढ़ने की ओर हुई। उस समय तक ये न्याय, व्याकरण और काव्य में अच्छी योग्यता प्राप्त कर चुके थे। शांकरभाष्य सहित उपनिषद् पढ़ कर दिनकरी महाभाष्य पढ़ने के लिये ये जम्बू चले गए।

पंडित राजाराम वासिष्ठ ।
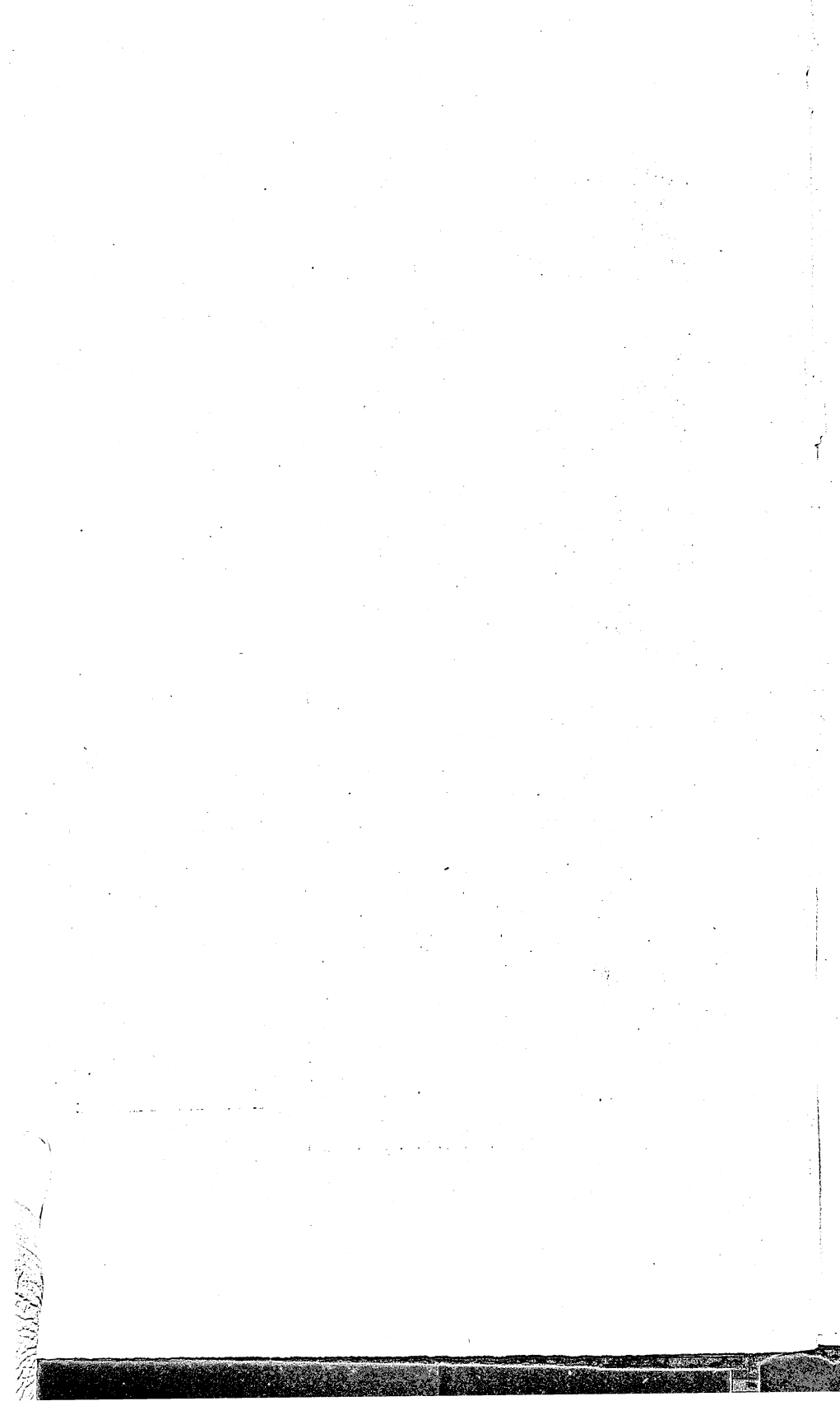
सन् १८८९ में ये फिर घर लौट आए। वहाँ इन्होंने हिंदी की एक पाठशाला स्थापित की। कुछ दिनों के अनंतर ये अमृतसर चले गए और पीछे वह पाठशाला टूट गई। वहाँ दो वर्ष तक आर्यसमाज में अध्यापक रहने पर सन् १८९२ में लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल ने इन्हें अपने पास बुला लिया। वहाँ जाकर ये स्कूल में संस्कृत के अध्यापक हुए और दो ही वर्ष बाद कालेज में प्रोफ़ेसर बना दिए गए।

सन् १८९७ में इन्होंने कुछ वेदमंत्रों की बालोपदेश नामक हिंदी-व्याख्या लिखी। इसे कालेजकमेटी ने अपनी ओर से छपवा कर स्कूल की धार्मिक शिक्षा के कोर्स में नियत कर दिया। भक्ति और धर्मसंबंधी अपने उपदेशों का संग्रह करके इन्होंने "तप और दीक्षा" और "उपदेशसप्तक" नामक दो पुस्तकें बनाईं। सन् १८९९ में इन्होंने "ओंकारमाहात्म्य" लिखा और ईश तथा केन उपनिषद् के हिंदी-भाष्य किए। उसी वर्ष अगस्त में कालेज ने ५०) मासिक की छात्रवृत्ति देकर इन्हें मीमांसादि पढ़ने के लिये काशी भेजा। महा-महोपाध्याय पंडित शिवकुमारजी से इन्होंने मीमांसा और पंडित भोलानाथजी सोमयाजी से वेद पढ़ा और यज्ञ की प्रक्रिया सीखी। दो वर्ष पीछे ये फिर लाहोर लौट गए। इस बेर कालेजकमेटी ने इन्हें शास्त्रों के अनुवाद का काम सुपुर्द किया। तदनुसार इन्होंने निरुक्त का भाषांतर किया। १९०२ में इन्हें फिर पढ़ाई का काम मिला। उसी वर्ष अपनी ओर से इन्होंने शंकराचार्य का जीवनचरित लिखा। १९०३ में इन्होंने वेद के कुछ सूक्तों पर भाष्य किया, पर वह छप न सका। इसके अतिरिक्त सन् १९०४ में इन्होंने और भी कई ग्रंथ लिखे, पर पहले की पुस्तकों की बिक्री न होते देख उन्हें छपवाने का इन्हें साहस न हुआ। इस बीच में इनके भक्त

आहिताग्नि राय शिवनाथ एकज़ीक्यूटिव इंजीनियर इनसे मिले और इन लोगों ने संस्कृत और हिंदी में दिसंबर सन् १९०४ में "आर्ष-ग्रंथावली" नामक मासिक पत्रिका निकाली। पर हिंदी ही जानने-वाले ग्राहकों की संख्या अधिक होने के कारण अंत में इन्होंने उसे केवल हिंदी ही में रहने दिया। १९०५ के अंत तक उसमें वेदोपदेश, वासिष्ठधर्मसूत्र और बृहदारण्यक उपनिषद् निकले। साथ ही राय शिवनाथजी को १३ महीने में ७००) का घाटा रहा। १९०६ में राय शिवनाथ ने अपनी ग्रंथावली अलग निकाली। सन् १९०६ में इन्होंने कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और छांदोग्य उपनिषद् की व्याख्या तैयार की। इन्होंने दो तीन सभाओं को मुफ़्त संपादन करके इन ग्रंथों के प्रकाशन का भार देना चाहा पर किसी ने भी स्वीकार न किया। इस पर आप हतोत्साह न हुए और अपना कार्य करते रहे। इसके अनंतर १९०९ तक इन्होंने उपनिषदों की शिक्षा, श्वेताश्वतर उपनिषद्, वेदांतदर्शन, नवदर्शनसंग्रह, पारस्करगृह्यसूत्र, वेद, रामायण, मनु और गीता के उपदेश आदि बहुत से ग्रंथ लिखे। १९०९ में आर्षग्रंथावली का प्रचार युक्तप्रांत में खूब हुआ और इन्हें सरकार से ३००) का पुरस्कार भी मिला, जिससे उस वर्ष इन्हें कोई घाटा न रहा। १९१० में "गीता हमें क्या सिखलाती है" "आर्य-पंचमहायज्ञपद्धति" और "स्वाध्याययज्ञ" नामक पुस्तकें निकलीं। १९११ में इन्होंने ग्रंथावली का संपादन करने के अतिरिक्त हिंदी में श्रीवाल्मीकीय रामायण भी लिखी। उसके लिये इन्हें पंजाब सरकार से २००) और पंजाब विश्वविद्यालय से ५००) पुरस्कार मिले। सन् १९११ में गायत्री के गंभीर अर्थ और आशय पर इनका जो उपदेश हुआ था, उसकी दस हज़ार प्रतियाँ छपवा कर आर्यसमाज ने गत दरबार के अवसर पर दिल्ली में बटवाई थीं।

१९१२ में भी इनकी ग्रंथावली में बहुत सी उपयोगी पुस्तकें निकली हैं।

संस्कृत के ये बड़े भारी विद्वान् हैं। ये जो कुछ लिखते हैं वह बहुत अनुसंधान करके और निष्पक्ष होकर लिखते हैं। इनकी भाषा भी सरल होती है। प्राचीन शास्त्रों का और वेदों का ये बहुत अच्छा अर्थ लगाते हैं। वेद के एक गूढ़ मंत्र का ठीक ठीक अर्थ करने पर राय शिवनाथ ने इन्हें एक बेर १००) दिए थे। आज-कल ये स्कूल और कालेजों में धर्मशिक्षा के लिये पुस्तकें लिख रहे हैं। इस समय आपके एक कन्या और तीन पुत्र हैं।

---

(२४) पंडित महेंदुलाल गर्ग ।

पंडित महेंदुलाल गर्ग का जन्म मथुरा ज़िले के सलेमपुर गाँव में ४ अगस्त सन् १८७० को हुआ था। इनकी प्रारंभिक हिंदी शिक्षा इनके गाँव के निकट के फ़रह नामक क़सबे में हुई जहाँ १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने हिंदी की मिडिल परीक्षा पास करके एक वर्ष तक उर्दू की शिक्षा पाई। इसके बाद अँगरेज़ी शिक्षा के लिये ये आगरे गए। आगरे में संयोग से इनकी भेंट एक ऐसे जौहरी सज्जन से हो गई जिनके पास हिंदी पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह था। पढ़ने के अतिरिक्त शेष समय में ये उन्हीं के पुस्तकालय में जाकर हिंदी की पुस्तकें देखा करते थे।

उसी समय आगरे के मेडिकल स्कूल के ज़नाना क्लास के लिये हिंदी में पुस्तकें तैयार करने के लिये एक ऐसे आदमी की आवश्यकता हुई जो हिंदी लिखने के अतिरिक्त साधारण उर्दू और अँगरेज़ी भी जानता हो। ये परीक्षा देकर उस स्थान पर नियुक्त हो गए। दो वर्ष ये यहाँ पुस्तकें तैयार करने के काम पर रहे। इसके पीछे ये स्वयं भी मेडिकल स्कूल में भर्ती हो गए और सन् १८६१ में हास्पिटल असिस्टेंट का डिप्लोमा प्राप्त करके सेना-विभाग में डाक्टर नियुक्त हो गए।

सैनिक जीवन में इन्हें घूमने फिरने का अच्छा अवसर हाथ आया। इनकी पहिली यात्रा गिलगिट की ओर हुई, जिसमें इन्होंने

पंडित महेंदुलाल गर्ग।

काश्मीर की अच्छी सैर की। वहाँ की घाटियों में इन्होंने दूर दूर तक सफर किया। वहाँ से डेढ़ वर्ष बाद लौटने पर इन्हें कई वर्षों तक पंजाब और सीमा प्रांत में रहना पड़ा। तीरा के युद्ध में उपस्थित रहने के लिये इन्हें एक पदक भी मिला था। सीमा प्रांत के पठानों का उपद्रव शांत होने पर इनकी स्थिति रावलपिंडी में हुई। वहाँ से सन् १८९९ में इन्हें सेना के साथ चीन जाना पड़ा। चीन में ये एक वर्ष रहे। चीन देश के संबंध में इन्होंने चीनदर्पण नामक पुस्तक भी लिखी है। उस समय चीन की राजधानी पेकिंग में अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया, फ्रांस और इँगलैंड सातों साम्राज्यों की सेनाएँ इकट्ठी हुई थीं।

अपना भ्रमण-वृत्तांत ये समय समय पर समाचारपत्रों में छपवाते रहे। भारतमित्र में कई वर्षों तक "गर्गविनोद" शीर्षक एक लेखमाला निकलती थी जिसमें इनके भ्रमण और जीवनसंबंधी अनेक बातें थीं। यह लेखमाला पीछे से पुस्तकरूप में प्रकाशित कर दी गई। हिंदी में अब तक इन्होंने शिशुपालन, पृथ्वीपरिक्रमा, पतिपत्नीसंवाद, दंतरक्षा, तरुणों की दिनचर्या, चीनदर्पण, जापानदर्पण, अनंतज्वाला, जापानीय स्त्रीशिक्षा, प्लेगचिकित्सा, ध्रुवदेश, सुखमार्ग, परिचर्याप्रणाली आदि पुस्तकें लिखी हैं जिनका हिंदी-संसार में उचित आदर हुआ है।

इनके धर्मसंबंधी विचार आर्यसामाजिक हैं और इस समय ये मथुरा के सैनिक अस्पताल में काम करते हैं।

———

(२५) पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ।

पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री के पूर्वज रायबरेली ज़िले के चन्हात्तर नामक ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनके पितामह का मध्यप्रदेश से कुछ व्यावसायिक संबंध हो गया था इसलिये ये लोग वहीं रहते थे । बीच बीच में आवश्यकता पड़ने पर स्वदेश भी आ जाया करते थे । इनके पिता पंडित लक्ष्मणप्रसादजी अग्निहोत्री नागपुर का रेशमी कपड़ों का व्यवसाय करते थे जिसमें उन्होंने अच्छा धनोपार्जन भी किया था । उनके दो विवाह हुए थे । पहिली स्त्री से दो पुत्र तथा दूसरी स्त्री से तीन पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं । पंडित लक्ष्मणप्रसादजी विद्वान् तो नहीं, पर भगवद्भक्त बहुत थे । सन् १८५७ के ग़दर के समय जब ये एक बेर सपरिवार बैलगाड़ी पर स्वदेश को जा रहे थे तो मार्ग में सरकारी कर्मचारियों ने इन्हें बाग़ी समझ कर पकड़ लिया था पर अंत में उनकी भगवद्भक्ति के कारण ही उनको निर्दोष समझ कर छोड़ दिया और ऐसा प्रबंध कर दिया जिसमें फिर उन्हें वैसा कष्ट न हो ।

पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का जन्म नागपुर में संवत् १९२७ की श्रावण कृष्णा ७ को हुआ । ९ वर्ष की अवस्था में इनकी माता का देहांत हो गया । उस समय इनका तथा इनके एक छोटे भाई और बहिन का पालन पोषण इनकी फुफेरी भावज ने किया । ७ वर्ष की अवस्था में ये नागपुर में एक पुराने ढँग की पाठशाला में बैठाए गए

पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

थे जहाँ इन्होंने गिनती और नागरी लिपि सीखी। वहाँ की शिक्षा समाप्त होने पर मराठी शिक्षा के लिये ये दूसरी पाठशाला में बैठाए गए। पहिले पहिल तो इनके सहपाठी इनके पढ़ने की हँसी उड़ाते थे पर थोड़े ही दिनों में ये उन्हीं लोगों के शिक्षक बन गए। उस समय अंकगणित में ये बहुत प्रवीण थे किंतु इनकी शिक्षा का यथोचित प्रबंध नहीं किया गया। उसी समय ये बहुत बीमार पड़ गए और जब कई मास पीछे अच्छे हुए तो पिताजी ने इन्हें अपनी दूकान पर बही-खाता लिखने के लिये बैठा लिया। बही लिखने और ब्याज फैलाने के काम में भी ये बहुत चतुर थे। उस समय इनके पिता ने अपने एक मित्र की सम्मति से अँगरेज़ी पढ़ने के लिये मिशन स्कूल में इन्हें भर्ती करा दिया, जहाँ इन्होंने अपर-प्राइमरी तक की शिक्षा समाप्त की। इसके अनंतर एक दूसरे मिशन स्कूल में सन् १८८८ में इन्होंने मिड़िल पास किया। उस समय इनकी दूसरी भाषा मराठी थी। एंट्रेंस में पहुँच कर इन्होंने दूसरी भाषा संस्कृत ली, उसी समय इन्होंने अपने मुहल्ले के दो पंडितों से लघुकौमुदी और रघुवंश का अध्ययन किया। उन दिनों स्कूल में प्रकांड पंडित लिंगा राजेश्वर बी० ए०, बी० एल्०, एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर और ख़ाँ साहब अब्दुल अजीज़ ख़ाँ बी० ए०, ओरिएंटल ट्रांसलेटर इनके सहपाठी और स्नेही थे। अस्तु, ये एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके। इधर इनके पिता का कारबार भी कुछ मंदा पड़ गया। बस इनकी शिक्षा यहीं समाप्त हो गई।

सन् १८९२ में ये वर्धा गए और बाबू जगन्नाथप्रसाद तत्कालीन असिस्टेंट सेटिलमेंट आफ़िसर से मिले। वहाँ इन्हें नक़लनवीस की जगह मिल गई। साथ ही बाबू साहब ने इन्हें अपने पुस्तकालय की पुस्तकें देखने की भी आज्ञा दे दी। वहीं से इनके हिंदी के अभ्यास

की वृद्धि हुई। वहाँ इन्होंने उक्त बाबू साहब को छन्दःप्रभाकर के संशोधन में भी अच्छी सहायता दी थी। उस संबंध में इन्हें प्रायः छः मास तक काशी के भारतजीवन यंत्रालय में रहना पड़ा था। भारतजीवन के तत्कालीन संपादक बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री के परामर्श से इन्होंने नागपुर लौट कर चिपलूणकर शास्त्री की निबंधमाला में से समालोचना-शीर्षक निबंध का अनुवाद करके नागरीप्रचारिणी पत्रिका के पहले वर्ष के पहिले अंक में छपवाया। इसके बाद इन्होंने शास्त्रीजी के अन्य निबंधों का भी अनुवाद कर डाला। उसी अवसर पर इन्होंने प्रणयी माधव का भी अनुवाद किया। सन् १८९४ के आरंभ में इन्हें जूनियर चेकर का पद मिला। सन् १८९५ में इन्होंने मराठी के राष्ट्रभाषा नामक लेख का हिंदी अनुवाद किया। इसके पीछे आपने और भी अनेक ग्रंथ लिखे और अनुवाद किए जिनमें से संस्कृत कविपंचक, मेघदूत, निबंधमालादर्श, डाक्टर जानसन की जीवनी (अप्रकाशित) और नर्मदाविहार मुख्य हैं। इनकी अधिकांश पुस्तकों की हिंदी के अच्छे अच्छे विद्वानों ने सराहना की है। प्रयाग में द्वितीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर भी इन्होंने "मध्य-प्रदेश में हिंदी की अवस्था" शीर्षक एक लेख भेजा था।

इनका विवाह संवत् १९४४ में हुआ था। इनकी पहली स्त्री शिक्षिता थी। उससे इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। संवत् १९५५ में उस स्त्री का देहांत हो गया। उसके तीन वर्ष अनंतर इनके प्रथम पुत्र की भी मृत्यु हो गई। संवत् १९५७ में इनके पिता ने इनका दूसरा विवाह कर दिया था। दूसरी स्त्री से भी इन्हें एक पुत्र और एक कन्या हुई किंतु वह भी एक वर्ष से अधिक न ठहरी। इस समय इन्हें कोई भी संतान नहीं है।

सन् १९०८ में ये मध्यप्रदेश की सरकार की ओर से छुई-खदान

रियासत का प्रबंध करने के लिये भेजे गए थे। वहाँ इन्होंने अच्छी योग्यता से काम किया। जून सन् १९१२ से ये कोरिया रियासत के असिस्टेंट सुपरेंटेंडेंट या नायब दीवान हैं।

---

(२६) पंडित माधवराव सप्रे बी० ए० ।

अपनी मातृभाषा से प्रेम रखना और उसकी उन्नति के लिये प्रयत्न करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। जो लोग किसी प्रकार अपनी मातृभाषा की सेवा करते हैं वे मानों अपना कर्तव्य पालन करते हैं, पर जो लोग अपनी मातृभाषा के साथ ही साथ अन्य भाषा की सेवा करते हैं और सदा उसकी उन्नति में दत्तचित्त रहते हैं, वे अवश्य ही धन्य हैं और उस भाषा के सेवियों के धन्यवाद के पात्र हैं। पंडित माधवराव सप्रे की गणना ऐसे ही सज्जनों में है।

पंडित माधवराव सप्रे का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह ज़िले में हट्टा नामक एक तहसील के अंतर्गत पथरिया गाँव में १९ जून सन् १८७१ को हुआ था। आपके पिता का नाम कोंडेश्वर तथा माता का नाम लक्ष्मी बाई था। आपके चार बड़े भाई और तीन बहिनें थीं। उनमें से तीन भाइयों और दो बहिनों का देहांत हो गया है।

सप्रेजी चार वर्ष की अवस्था में अपने माता पिता के साथ अपनी मातृभूमि को छोड़कर बिलासपुर (म० प्र०) आए थे। वहीं उनकी हिंदी की शिक्षा आरंभ हुई। आठ नौ वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहांत हो गया। सन् १८८७ ई० में अँगरेज़ी पढ़ने के लिए ये स्कूल में भरती किए गए। कुछ समय पीछे इन्होंने मिडिल पास करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। इसके अनंतर रायपुर के हाई स्कूल में ये पढ़ने

पंडित माधवराव सप्रे बी० ए० ।
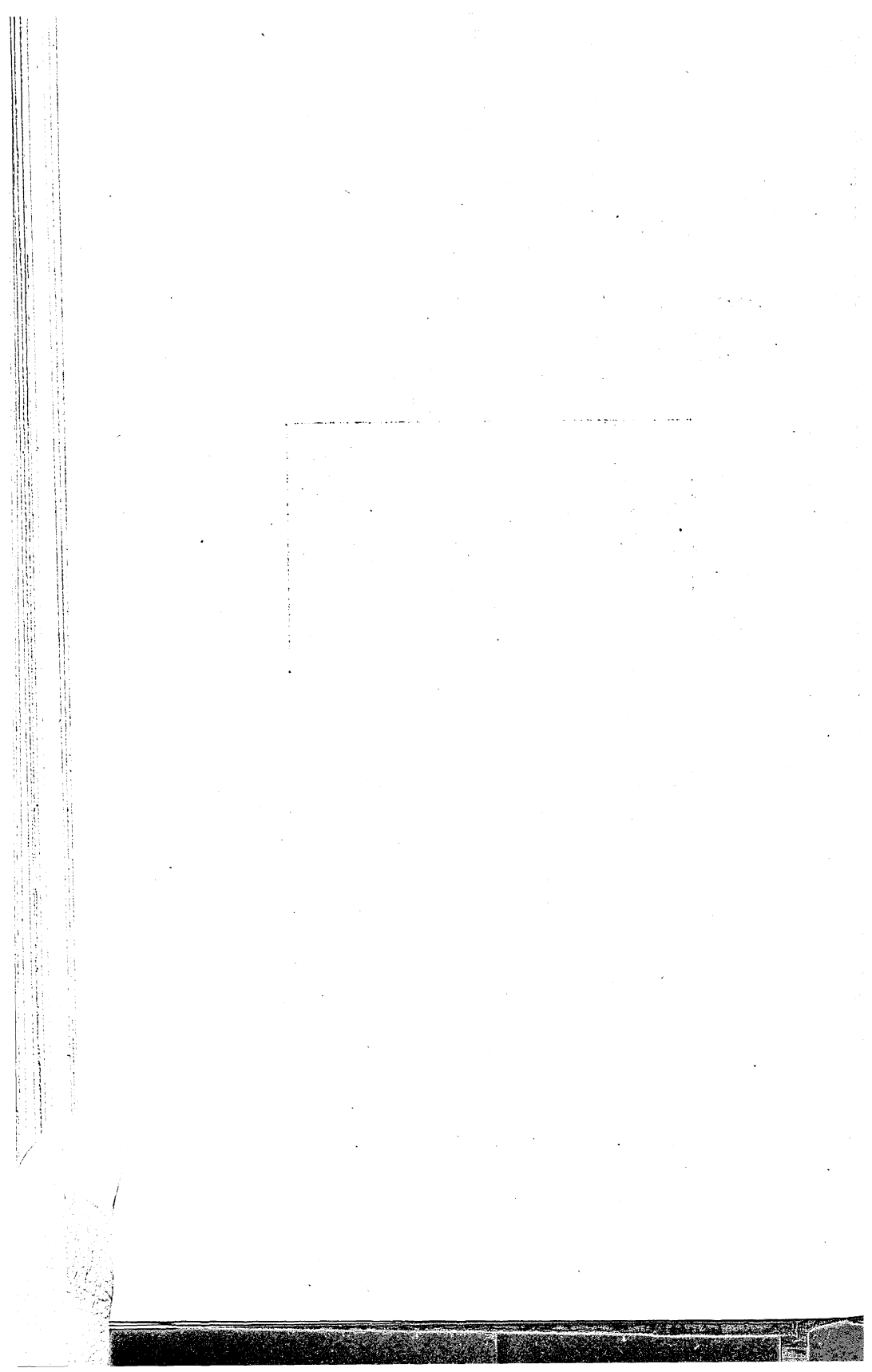
लगे। उस समय श्रीयुत रामराव राजाराम चिंचोलकर इनके सहपाठी और परम मित्र थे। उद्यानमालिनी, शकुंतला, उत्तररामचरित आदि के कर्त्ता पंडित नंदलाल दूबे और मराठी "काव्यसंग्रह" के संपादक श्रीयुत वामन दाजी ओक इनके शिक्षक थे और उन्हीं लोगों के संसर्ग से इनके हृदय में भी साहित्य-प्रेम उत्पन्न हुआ। सन् १८८९ ई० में इनका विवाह हुआ। दूसरे वर्ष इन्होंने एंट्रेंस परीक्षा पास की और छात्रवृत्ति प्राप्त करके ये जबलपुरकालेज में पढ़ने लगे। इसी वर्ष इनकी माता का देहांत हो गया। उस समय ये स्वयं भी बहुत बीमार पड़े और इसी कारण कुछ काल तक पढ़ना लिखना भी छूट गया। अच्छे होने पर ये अपने बड़े भाई पंडित वापूराव के पास, जो पेंडरा में तहसीलदार थे, चले गए और पबलिक वर्क्स तथा रेलवे में ठेकेदारी का काम करने लगे। पर यह काम उनकी रुचि के अनुकूल न था इससे इन्हें उसमें हानि हुई। इस काम को छोड़ कर जुलाई सन् १८९४ में ये लश्कर (ग्वालियर) में एफ़० ए० क्लास में भरती हो गए। एफ़० ए० पास करने के अनंतर इन्हें अपनी स्त्री की रुग्णता के कारण कांकेर जाना पड़ा। यहाँ से ये नागपुर गए और वहाँ बी० ए० क्लास में भरती हो गए। सन् १८९७ में इनकी स्त्री का देहांत हो गया। दूसरे वर्ष इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। बस यहीं अपनी पढ़ाई समाप्त कर सप्रेजी हिंदी की ओर झुके और उसके अच्छे अच्छे ग्रंथ पढ़ने लगे। उसी वर्ष इनका दूसरा विवाह हो गया और कुछ दिनों पीछे ये पेंडरा के राजकुमार के शिक्षक नियुक्त हो गए। सन् १९०० में वहीं से इन्होंने "छत्तीसगढ़ मित्र" नामक मासिक पत्र निकालना आरंभ किया। लगभग तीन वर्षों तक यह अच्छी तरह चलता रहा, पर अंत में अर्थाभाव के कारण बंद हो गया। 'मित्र' ने पुस्तकों की समालोचना करने में अच्छा नाम पाया था। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा का पहला डेपुटेशन जब सभाभवन के

लिये रुपया इकट्ठा करने के उद्देश से निकला था तब ये भी अपने मित्र पंडित रामराव राजाराम चिंचोलकर के साथ ही संयुक्त प्रदेश के कई स्थानों में घूमे थे। इस डेपुटेशन ने धन एकत्रित करने में अच्छी सफलता प्राप्त की थी। जब काशी-नागरीप्रचारिणी सभा "वैज्ञानिक कोश" के बनवाने में लगी हुई थी उस समय सप्रेजी ने अर्थ-शास्त्र के शब्दों का संग्रह उसके लिये किया था तथा "वैज्ञानिक कोश" के संबंध में बड़े बड़े विद्वानों की सम्मति और सहायता प्राप्त करने के लिये पूना और बंबई गए थे।

सन् १९०९ ई० में सप्रेजी नागपुर के देशसेवक प्रेस के मैनेजर नियत हुए। उस समय इन्होंने "हिंदी-ग्रंथ-माला" का प्रकाशन आरंभ किया। इस माला में स्वाधीनता, महारानी लक्ष्मी बाई, स्वदेशी आंदोलन और बायकाट, निबंधसंग्रह, शिक्षा आदि बहुत ही उत्तम और समयोचित ग्रंथ निकले थे। उस समय इन्होंने अपने कई मित्रों की सहायता से पंडित बाल गंगाधर तिलक के "केसरी" पत्र का भाषांतर साप्ताहिक "हिंदी-केसरी" निकालना आरंभ किया। हिंदी-केसरी निकलने के कुछ काल पीछे ग्रंथमाला बंद हो गई। हिंदी-केसरी प्रारंभ से ही बड़ी धूम धाम से निकला और खूब चल पड़ा, पर थोड़े ही दिनों में उसे ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। केसरी पर मुक़द्दमा चला, सप्रेजी पकड़े गए और कई मासों तक घोर आपत्ति झेलते रहे। अंत में कई मित्रों के अनुरोध से इन्होंने सरकार से क्षमा माँग ली और पत्र निकालना बंद कर दिया। इस दुर्घटना से सप्रेजी का मन बहुत खिन्न हो गया। अंत में एक संसारत्यागी महात्मा की कृपा से इन्हें शांति मिली। तब से एक प्रकार संसार से अलग हो ये रायपुर में एकांतवास करते हैं। पर इस अवस्था में भी हिंदी को नहीं भूले हैं। वरन् उसकी सेवा में लगे हुए हैं। इन्होंने हिंदी-दास-

बोध, रामदास स्वामी की जीवनी, आत्मविद्या, एकनाथ-चरित्र, भारतीय युद्ध आदि अनेक ग्रंथ लिखे हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं। सप्रेजी प्रायः मासिक पत्रों में लेख लिखते हैं। इसके अतिरिक्त ये रायपुर के कई सार्वजनिक कार्यों में भी योग देते हैं। वहाँ ये स्वयं विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं। एक कन्यापाठशाला भी इन्होंने खोल रक्खी है। भजन, कीर्त्तन और कथा के द्वारा ये नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा का भी प्रचार करते हैं। १४ जुलाई १९११ को इनकी दूसरी स्त्री का भी देहांत हो गया। इस स्त्री से इन्हें धार्मिक और परोपकारी कार्यों में बहुत सहायता मिलती थी। इस समय इनकी एक छोटी कन्या और दो पुत्र हैं।

सप्रेजी बड़े ही सरल, शांत, मिष्टभाषी और साधुचरित हैं। इनका स्वभाव बहुत मिलनसार और नम्र है।

———

(२७) पंडित सकलनारायण पांडेय, काव्य-व्याकरण-तीर्थ ।

आरा के सरयूपारीण ब्राह्मणों में श्रीयुत पंडित सिद्धिनाथ पांडेय, जिनका प्रसिद्ध नाम पंडित गोकुलदत्त था, बड़े संपन्न और कुलीन ब्राह्मण गिने जाते थे । उनके तीन पुत्र हुए—पंडित सत्यनारायण, पंडित सकलनारायण, और पंडित महेश्वरी पांडेय । ये तीनों भाई पूर्ण शिक्षित, सदाचारी और विद्वान् हैं ।

पंडित सकलनारायण पांडेय का जन्म पौष कृष्णाष्टमी गुरुवार संवत् १६२८ को हुआ था । बाल्यावस्था में पांडेयजी की प्रकृति बहुत ही चंचल थी और वे विद्याभ्यास की ओर बहुत कम ध्यान देते थे । परंतु कुछ दिनों पीछे इन्हें पुस्तकों से इतना अधिक अनुराग हो गया कि इनका अधिकांश समय पुस्तकों के पढ़ने में ही बीतने लगा । इन्होंने आरा के प्रसिद्ध विद्वान् व्याकरण-केसरी श्रीयुत पंडित पीतांबर मिश्रजी से व्याकरण और साहित्य के ग्रंथ पढ़े और काव्यतीर्थ और व्याकरणतीर्थ की उपाधियाँ प्राप्त कीं । इसके अतिरिक्त इन्होंने न्याय, दर्शन, वेद तथा उपनिषद् आदि बोधगम्य ग्रंथों का भी अनुशीलन किया । यही कारण है कि पंडितजी का सर्वत्र मान होता है और उनकी गणना संस्कृत के अच्छे ज्ञाताओं में की जाती है ।

पंडितजी अपनी मातृभाषा हिंदी के बड़े प्रेमी और हितैषी हैं । ११ वर्ष पूर्व इन्होंने आरा जैसे छोटे स्थान में बड़े परिश्रम से नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित की और अपने अनेक यजमानों,
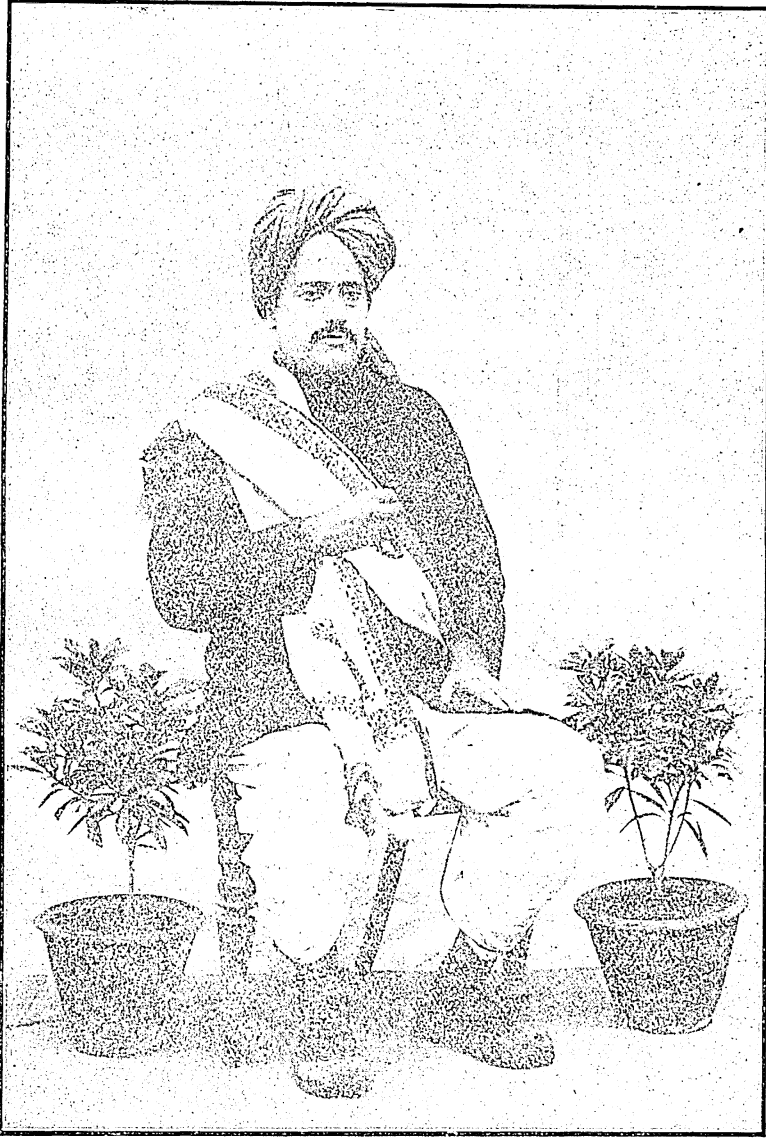
पंडित सकलनारायण पांडेय, काव्य-व्याकरण-तीर्थ ।

शिष्यों, मित्रों और परिचितों को उसमें सम्मिलित किया। इसके लिये इन्होंने बहुत अधिक परिश्रम किया था। इस सभा की स्थापना से विहार प्रांत में हिंदी का बहुत कुछ प्रचार हुआ है, विशेषतः आरा के लोगों में हिंदीप्रेम का अच्छा प्रसार हुआ है। इनके कारण आरा में कई सज्जन लेखक और कवि हो गए हैं, जो यथाशक्ति हिंदी की सेवा कर रहे हैं। आरा की सभा ने हिंदीप्रचार के लिये अब तक जो कुछ काम किया है उसका अधिकांश यश पांडेयजी को ही प्राप्त है। सभा हिंदी का जो व्याकरण बनवा रही है उसका निरीक्षण आप ही करते हैं।

इधर चार पाँच वर्षों से पांडेयजी शिक्षा नामक साप्ताहिक पत्रिका का संपादन करते हैं। यह काम भी आप अच्छी योग्यता से कर रहे हैं। यद्यपि यह पत्रिका बारह तेरह वर्ष से निकलती है पर पांडेयजी के हाथ में आने से पूर्व इसका प्रचार केवल शिक्षाविभाग में ही था। जब से पांडेयजी इसका संपादन करने लगे हैं तब से सर्वसाधारण में भी इसका आदर होने लगा है।

पांडेयजी ने सब मिला कर हिंदी और संस्कृत में १७ पुस्तकें लिखीं और संपादन की हैं। उनमें से सिद्धिनाथ कुसुमांजलि, तारके-श्वरयशोगानम् और यशःप्रकाश संस्कृत में, तथा हिंदी-सिद्धांतप्रकाश सृष्टितत्त्व, प्रेमतत्त्व, आरा-पुरातत्त्व, निबंधमाला, व्याकरण-तत्त्व आदि पुस्तकें हिंदी में मुख्य हैं। इन्होंने राजरानी और अपराजिता नामक दो उपन्यास भी लिखे हैं।

पांडेयजी समाजसुधारक होकर भी धार्मिक सभाओं को सहायता द्वारा उत्तेजना देते हैं। आरा तथा आस पास के शहरों की प्रायः सभी सभाओं में इनके मधुर और सारगर्भित व्याख्यान हुआ करते हैं। पांडेयजी पक्के सनातनधर्मावलंबी हैं, परंतु इनके सामाजिक विचार

बड़े ही उदार और स्वतंत्र हैं। आपका मत है कि नीच जातियों में बिना शिक्षा का प्रचार किए देश का कल्याण संभव नहीं। आज-कल छोटी जाति के लोगों को क्षत्रि होने का दावा करते देख ये प्रसन्न होते और कहते हैं कि यह भारत के भावी अभ्युदय का चिह्न है कि निम्नश्रेणी-वाले भी अपना जातीय सुधार कर रहे हैं। जनेऊ पहिनने से यह क्या कम लाभ होगा कि ये छोटी जातियाँ शराब पीना और मांस खाना छोड़ देंगी। यह विलायतयात्रा और विधवाविवाह के समर्थक और स्त्रीशिक्षा के बड़े पक्षपाती हैं। कनफुँकवा गुरुओं के ये बड़े विरोधी हैं। एक बेर इन्होंने आरा की सनातनधर्मसभा में साफ़ कह दिया था कि शास्त्रादि में ऐसे गुरुओं का कहीं उल्लेख नहीं है। मूर्तिपूजा और श्राद्ध आदि को ये सनातनधर्म का अतीव उपयोगी अंग समझते हैं। आरा के संकीर्तनसमाज के ये सभापति हैं। ये सदा रुद्राक्ष की माला हाथ में लिए शिवनाम का स्मरण करते रहते हैं। ये भली भाँति समझते हैं कि वेदाध्ययन ही ब्राह्मणों का मुख्य कर्तव्य है और उसी के अभाव में आज-कल देश में उनके विरुद्ध आंदोलन हो रहा है।

विहार के हिंदीलेखकों में पांडेयजी का स्थान ऊँचा है। संस्कृत के और पंडितों के विपरीत इन्हें मातृभाषा हिंदी से बहुत प्रेम है और ये उसके अच्छे उन्नायकों में से हैं। साथ ही ये आचारवान्, सरल स्वभाव के और बहुत मिलनसार हैं*।

---

* अब आप कलकत्ते के संस्कृत कालेज में अध्यापक हैं।
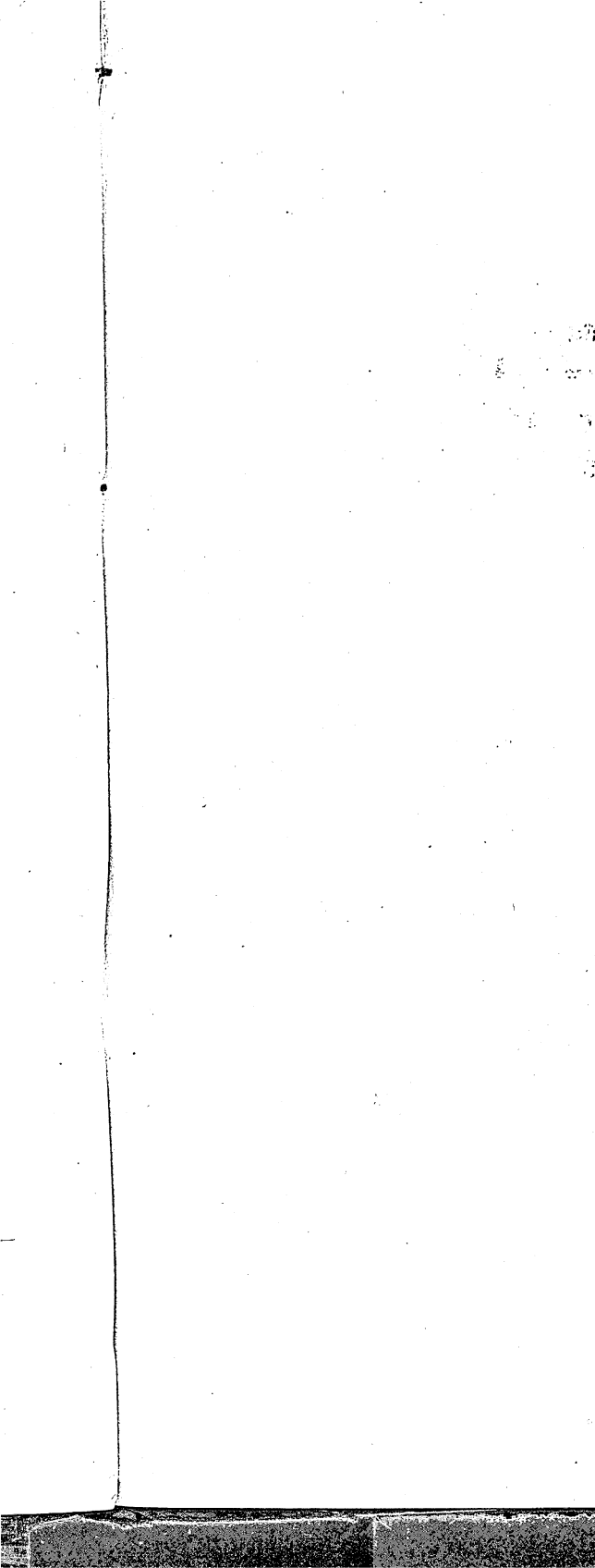
बाबू व्रजनंदनसहाय बी० ए० ।

(२८) बाबू व्रजनंदनसहाय बी० ए०।

बाबू व्रजनंदनसहाय का जन्म शाहाबाद ज़िले के इख़्तियारपुर नामक गाँव में संवत् १९३१ की भाद्र शुक्ला अष्टमी को हुआ था। इनके पिता बाबू शिवनंदनसहाय हैं जिनका चित्र और चरित्र अन्यत्र इस रत्नमाला में प्रकाशित है। आरंभ में बाबू व्रजनंदनसहाय ने अपने दादा से उर्दू की शिक्षा पाई। फिर अपने पिता से इन्होंने हिंदी तथा अँगरेज़ी पढ़ी। लड़कपन में ये कुछ उच्छृंखल स्वभाव के थे पर वंश में बहुकाल से विद्या का व्यसन रहने से ये पढ़ने लिखने में निरंतर उन्नति करते गए। अंत में बी० ए० पास कर तथा वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण हो इन्होंने अपनी पढ़ाई समाप्त की। स्कूल तथा कालिज में इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी रही किंतु हिंदी की ओर रुचि रहने के कारण पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने से जो समय बचता था उसे ये हिंदी की पुस्तकों के पढ़ने तथा उस भाषा में विज्ञता प्राप्त करने में लगाते थे।

इनके पिता तथा वंश के अन्य लोगों के उद्योग से इनके गाँव में एक "नाटकमंडली" स्थापित हुई थी जिसमें ये भी अभिनय किया करते थे। इस संबंध में इन्हें भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, लाला खड्गबहादुरमल्ल आदि नाटककारों की रचना पढ़ने का पूरा अवसर मिलता रहा।

जब ये एफ़० ए० में पढ़ते थे तब बाबा सुमेरसिंह के सभापतित्व में पटने में एक कविसमाज स्थापित हुआ था। उसके मुख्य पत्र "सम-

स्यापूर्ति" के ये संपादक थे। पहले पहल इन्होंने ब्रजभाषा में कविता करनी आरंभ की। उक्त बाबा सुमेरसिंह इनके काव्यगुरु थे। ब्रज-भाषा में "ब्रजविनोद" "सत्यभामामंगल" आदि कई पुस्तकें इन्होंने लिखी हैं।

जब ये बी० ए० में पढ़ते थे इन्हें बीरभूम में रहने का अवसर मिला था। वहाँ कुछ दिन ठहर कर और वंगभाषा में योग्यता प्राप्त कर इन्होंने सप्तम प्रतिमा (नाटक) तथा चंद्रशेखर (उपन्यास) का हिंदी भाषा में अनुवाद किया। इसके पहले राजेंद्रमालती तथा अद्भुत प्रायश्चित्त नाम के दो छोटे छोटे उपन्यास इनके प्रकाशित हो चुके थे।

जब से ये आरे में वकालत करने लगे, इनका स्थानीय नागरी-प्रचा-रिणी सभा से विशेष संबंध होगया। उसके लिये इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें प्रधान "मैथिलकोकिल विद्यापति" है। पहले लोगों की ऐसी धारणा थी कि कविवर विद्यापति वंगभाषा के कवि थे। इन्होंने इस ग्रंथ का संपादन कर इस बात को सिद्ध कर दिया कि वे विहार के एक प्रधान कवि थे और मिथिला उनका निवासस्थान था। इस पुस्तक के प्रकाशित करने में बंगाल सर्कार ने आर्थिक सहायता दी थी।

आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा की मुखपत्रिका का ये आज आठ वर्षों से संपादन कर रहे हैं। प्रायः गत तीन वर्षों से ये इस सभा के मंत्री भी हैं। इनके समय में सभा ने अच्छी उन्नति की है। कचहरी के कामों से जितना समय मिलता है उसे ये हिंदी ही की सेवा में लगाते हैं।

अभी तक हिंदी में भावमूलक उपन्यास लिखने की शैली नहीं थी। पहले पहल इन्होंने भावपूर्ण "सौंदर्योपासक" नामक उपन्यास लिखकर इस अभाव को दूर किया। इस पुस्तक में भावों का

साद्यंत साम्राज्य है। इस श्रेणी का दूसरा उपन्यास इनका राधाकांत है।

अब ये खड़ी बोली में भी कविता करते हैं। सब मिलाकर अब तक इन्होंने कोई २५ पुस्तकें अनेक विषयों पर लिखी हैं जिनमें से तीन चार अनुवादित हैं। इनके ग्रंथों में प्रायः गंभीर विषय रहा करते हैं और भाषा क्लिष्ट होती है। रहन-सहन इनकी बहुत सरल तथा सादी है।

---

(२६) पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य।

कई सौ वर्ष हुए पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य के पूर्वपुरुष गुजरात से आकर संयुक्त प्रांत के मुरादाबाद नगर में बस गए थे। इनके प्रपितामह पंडित राधाकृष्ण, पितामह पंडित चंद्रमणिजी तथा पिता पंडित ज्वालानाथ शास्त्रीजी ने ज्योतिष (फलित) विद्या में बहुत ख्याति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त उन लोगों ने अपने अपने समय में कई राजाओं और रईसों से पुरस्कारस्वरूप हाथी घोड़े तथा मकान आदि पाए थे।

पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य का जन्म संवत् १९३२ की आश्विन शुक्ला २ को मुरादाबाद में ही हुआ था। प्रारंभ में इन्होंने अपने पिताजी से ही ज्योतिष, छन्दःशास्त्र, वैद्यक और मंत्रशास्त्रादि का अध्ययन किया था। इसके अनंतर अन्य पंडितों से व्याकरण, न्याय, साहित्य तथा कर्मकांड की भी शिक्षा प्राप्त की थी।

१४-१५ वर्ष की अवस्था से ही व्रजरत्नजी को हिंदी तथा संस्कृत में कविता करने का शौक़ हुआ। कवि व चित्रकार, भारतभानु, कलकत्तासमाचार तथा हिंदोस्थान आदि पत्रों में प्रायः इनकी कविता छपा करती थी। इसके अतिरिक्त अन्य कई पत्रों में अब तक इनके लिखे गद्य लेख निकला करते हैं।

इन्होंने अपने व्यय से ज्वालानाथ नामक एक संस्कृत-पाठशाला

पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य ।
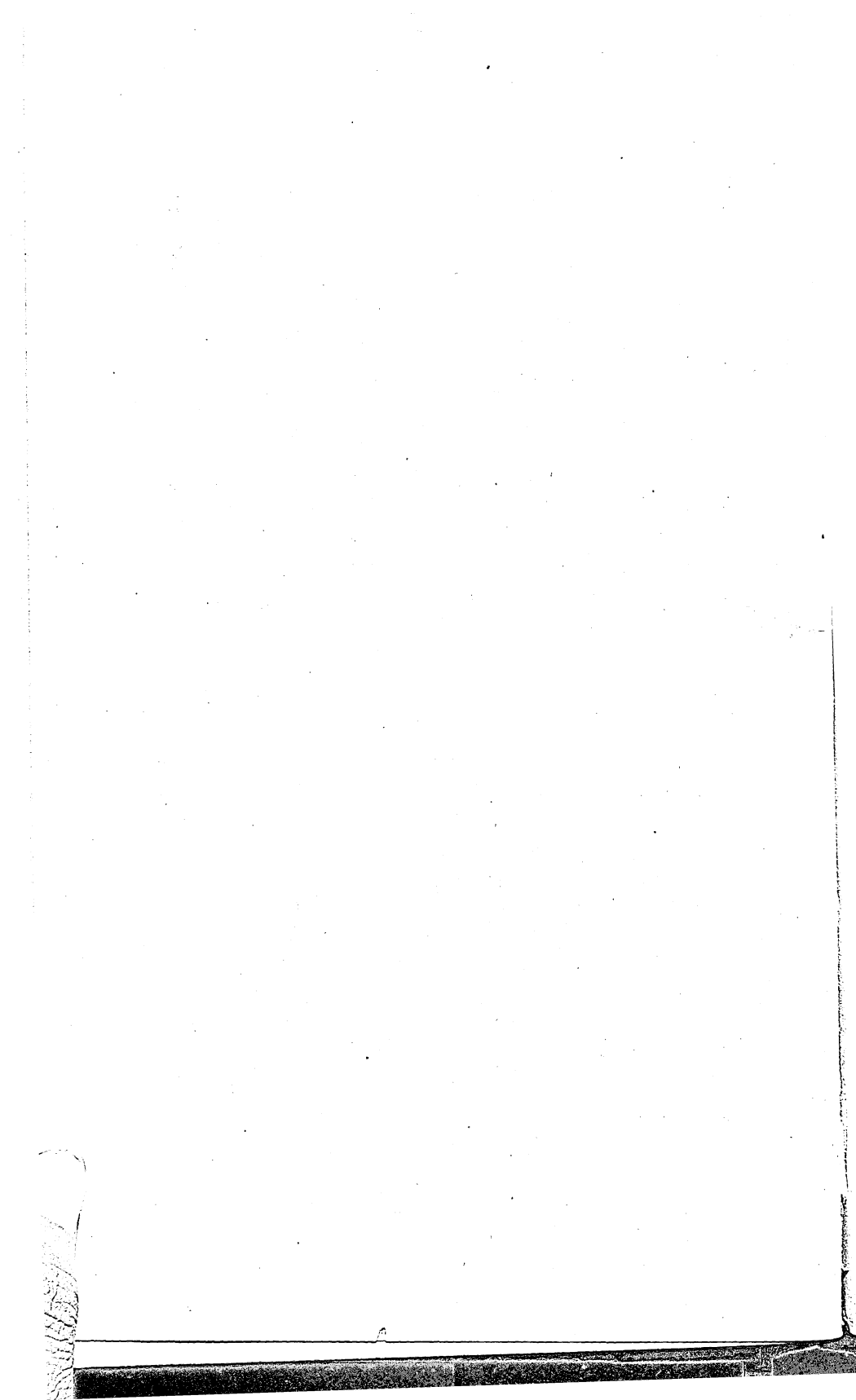
बारह वर्षों से खोल रक्खी थी। उसमें असमर्थ विद्यार्थियों को पुस्तकें मुफ़ दी जाती थीं। युक्तप्रांत की अदालतों में नागरीप्रचार की आज्ञा होने के समय इन्होंने अपने शहर में लोगों को मुफ़ नागरी की शिक्षा देने का प्रबंध किया था। हिंदी और संस्कृत की उन्नति के लिये ये प्रयाग विश्वविद्यालय के उन छात्रों को मेडल और घड़ियाँ आदि उपहार में दिया करते हैं जो इन भाषाओं में सबसे अधिक नंबर पाकर उत्तीर्ण होते हैं। कई स्कूलों और पाठशालाओं में भी प्रति वर्ष अनेक प्रकार के उपहार इनकी ओर से बाँटे जाते हैं। भगवद्गीता, रामगीता, शिवगीता, योगवासिष्ठ, अभिज्ञानशाकुंतल, रत्नावलीनाटिका, हनुमन्नाटक, हितोपदेश, पंचतंत्र, सिद्धांतकौमुदी, लघुकौमुदी, निर्णयसिंधु, केदारखंड, मुहूर्तमार्तंड, मानसागरी, लीलावती, अमृत-सागर, औषधिकल्पलता, रघुवंश, अमरकोश, हठयोगप्रदीपिका, योगदर्शन आदि बहुत से संस्कृत-ग्रंथों की संस्कृत और हिंदी टीका आपने की है जिनके कारण प्रसन्न होकर कई राजा, महाराजों ने दक्षिणा आदि से इनका सम्मान किया है।

आज-कल भी ये संस्कृत के कई बड़े बड़े ग्रंथों का भाषांतर कर रहे हैं। जीविकानिर्वाह का उपाय इनकी ज़मींदारी है। ये अपना अधिकांश समय कल्याण (बंबई) के लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस के लिये पुस्तकें लिखने तथा उसके अन्य कार्यों में लगाते हैं। यद्यपि सार्वजनिक और लोकोपकारी कामों की ओर इनकी विशेष रुचि है और ये उनमें अधिक उत्साह दिखाते हैं तो भी इन्हें एकांतवास और शांति बहुत पसंद है। इस समय इनके चार पुत्र हैं*।

---

* अब आप इस संसार में नहीं हैं।

(३०) पंडित कामताप्रसाद गुरु।

मध्यप्रदेश के सागर शहर से लगभग छः मील के अंतर पर गढ़पहरा नामक एक छोटा सा गाँव है। सागर के बसने से पहिले वहाँ दानी राजाओं की राजधानी थी। पंडित कामताप्रसादजी के पूर्वज उत्तर भारत से आकर पहले यहीं पर रहे और धीरे धीरे अपनी योग्यता के कारण रानियों के गुरु हो गए।

पंडित कामताप्रसाद गुरु का जन्म सागर में संवत् १९३२ के पौष मास में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित गंगाप्रसाद गुरु था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। यद्यपि इनका आस्पद पाण्डेय है तथापि वंशानुक्रम से ये 'गुरु' ही कहलाते हैं। बिलहरा के राजघराने में अब तक ऐसे लोग हैं जो इनके पिता से दीक्षित हुए थे।

इनकी शिक्षा सागर में ही हुई। सन् १८९२ में १७ वर्ष की अवस्था में इन्होंने एंट्रेंस पास किया था। तब से आज तक ये शिक्षक का कार्य करते हैं। आज-कल ये जबलपुर के नार्मल स्कूल में शिक्षक हैं।

स्कूल छोड़ते ही इनकी रुचि समाचारपत्रों की ओर हुई। उस समय जबलपुर-टाइम्स और शुभचिंतक, ये दो पत्र जबलपुर से निकलते थे। इन दोनों पत्रों में ही ये लेखादि लिखने लगे। कभी कभी ये फुटकर कविताएँ भी लिखते थे। सागर में दो वर्ष काम करने पर

पंडित कामताप्रसाद गुरु।

सन् १८९५ में ये रायपुर बदल दिए गए। वहाँ ठाकुर हनुमानसिंहजी से इनकी भेंट हुई। तब से ये हिंदी में पुस्तकें लिखने लगे। पहले इन्होंने एक उपन्यास और एक काव्य लिखा। पर उनमें तथा पंडितजी की आज-कल की रचनाओं में बहुत अंतर है। उस समय ये व्रजभाषा में कविता करते थे। सन् १९०० में इन्होंने भाषा-वाक्य-पृथक्करण नामक पुस्तक का पहला भाग लिखा। इसका विषय व्याकरण है। गत वर्ष इसके दोनों भाग एक साथ छप चुके हैं। पंडित माधवराव सप्रे की प्रेरणा से छत्तीसगढ़मित्र में ये नियमित रूप से लेखादि लिखने लगे। इसके अनंतर इन्होंने खड़ी बोली की कविता आरंभ की और उसमें प्राय: बीस कविताएँ कीं, जिनमें से अधिकांश सरस्वती में निकल चुकी हैं। इन्होंने थोड़ी ही कविता करके अच्छा नाम पाया है। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण होती है।

व्याकरण और साहित्य पर इनका आरंभ से ही प्रेम है। व्याकरण पर इन्होंने छोटी छोटी दो पुस्तकें और कई लेख लिखे हैं। संस्कृत, उर्दू, मराठी, बँगला और उड़िया भाषा का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। उड़िया की एक पुस्तक के आधार पर इन्होंने हिंदी में "पार्वती और यशोदा" नामक पुस्तक लिखी है। यह प्रयाग के इंडियन प्रेस में छपी है और स्त्रियों के लिये उपयोगी है। इनके कई विनोदात्मक लेख कल्पित नामों से भी छपे हैं। आज-कल ये काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के लिये हिंदी-व्याकरण लिखने में लगे हुए हैं।

पंडित कामताप्रसाद की रहन सहन बहुत सादी है। ये सत्यवादी और विनोदप्रिय हैं। ऊपरी आडंबर इन्हें पसंद नहीं। अवसर पड़ने पर ये सब बातें स्पष्टरूप से कह देते हैं।

---

(३१) साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्मा एम० ए०।

भारद्वाज वंश के सरयूपारीण बहुत दिनों से सरयू के उत्तर तट पर सारंगारण्य (वर्तमान सारन) के मुख्य नगर छपरा में रहते आए हैं। पंडित देवनारायण शर्मा इसी वंश के एक कुशाग्रबुद्धि संस्कृतज्ञ धार्मिक विद्वान् थे। उनकी स्त्री श्रीमती गोविंददेवी भी अच्छी पढ़ी लिखी थीं। इसलिये इनके चारों पुत्र रामावतार, श्रीकांत, बलदेव और लक्ष्मीनारायण अच्छे विद्वान् हैं।

पांडेय रामावतार का जन्म १७९९ शकाब्द (वि० संवत् १९३४) में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही आपके पिता ने आपका विद्याभ्यास आरंभ कराया। बारह वर्ष की अवस्था में आपने बाँकीपुर में प्रथम वर्ग में प्रथम परीक्षा पास की और छात्रवृत्ति पाई। प्रायः २० वर्ष की अवस्था में आप काशी संस्कृत कालेज की साहित्याचार्य परीक्षा में प्रथम वर्ग में प्रथम हुए। इसी बीच में आपने एंट्रेंस तथा अन्य कई परीक्षाएँ पास कीं और बराबर छात्रवृत्तियाँ पाईं। प्रायः सभी परीक्षाओं में आप प्रथम रहा करते थे। धनाभाव के कारण आपके पिता को अपने पुत्र की शिक्षा जारी रखने के लिये बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं। जब आप २० वर्ष के थे तब आपके पिता का देहांत हो गया। उस समय इनकी माता ने ज़ेवर तक बेच कर अपने होनहार पुत्र की शिक्षा का यथेष्ट प्रबंध किया। संवत् १९५५ में आपने एफ़० ए०, १९५७ में बी० ए० और १९५८ में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। इन सब परीक्षाओं में भी आप सदा
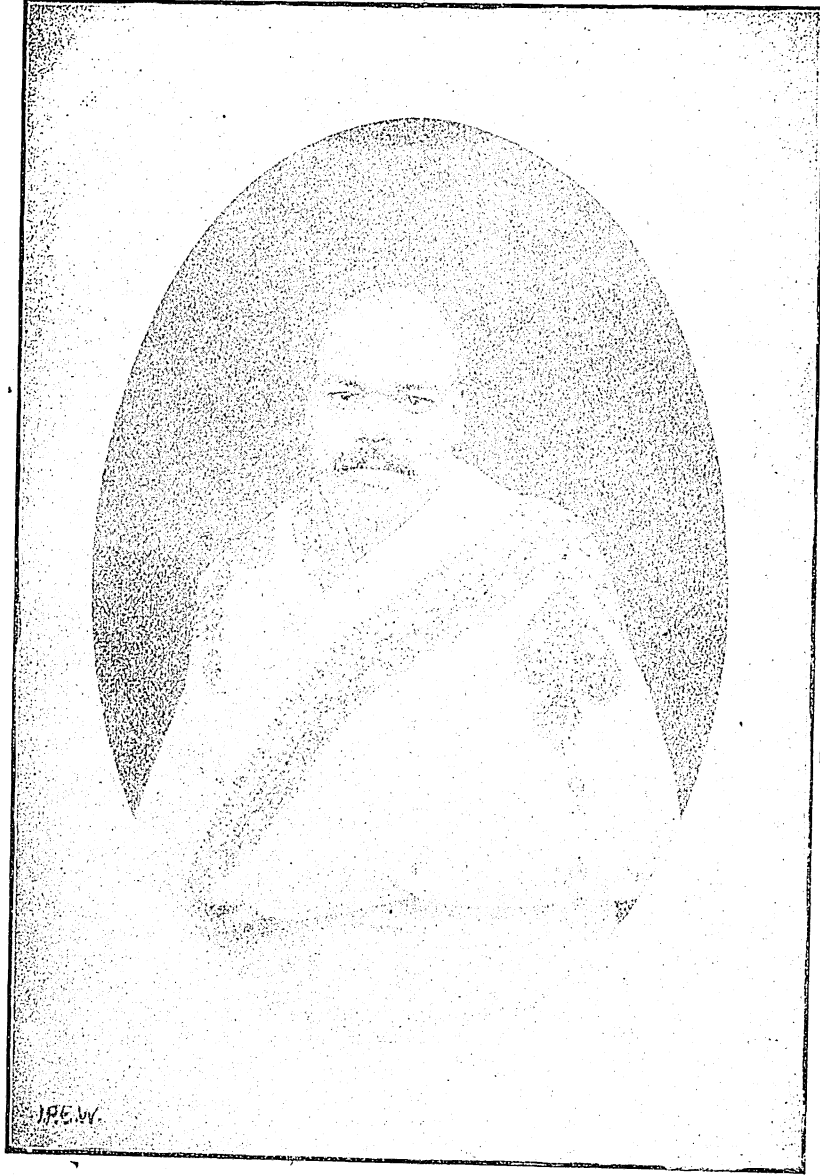
साहित्याचार्य पांडेय रामावतार शर्म्मा एम० ए० ।
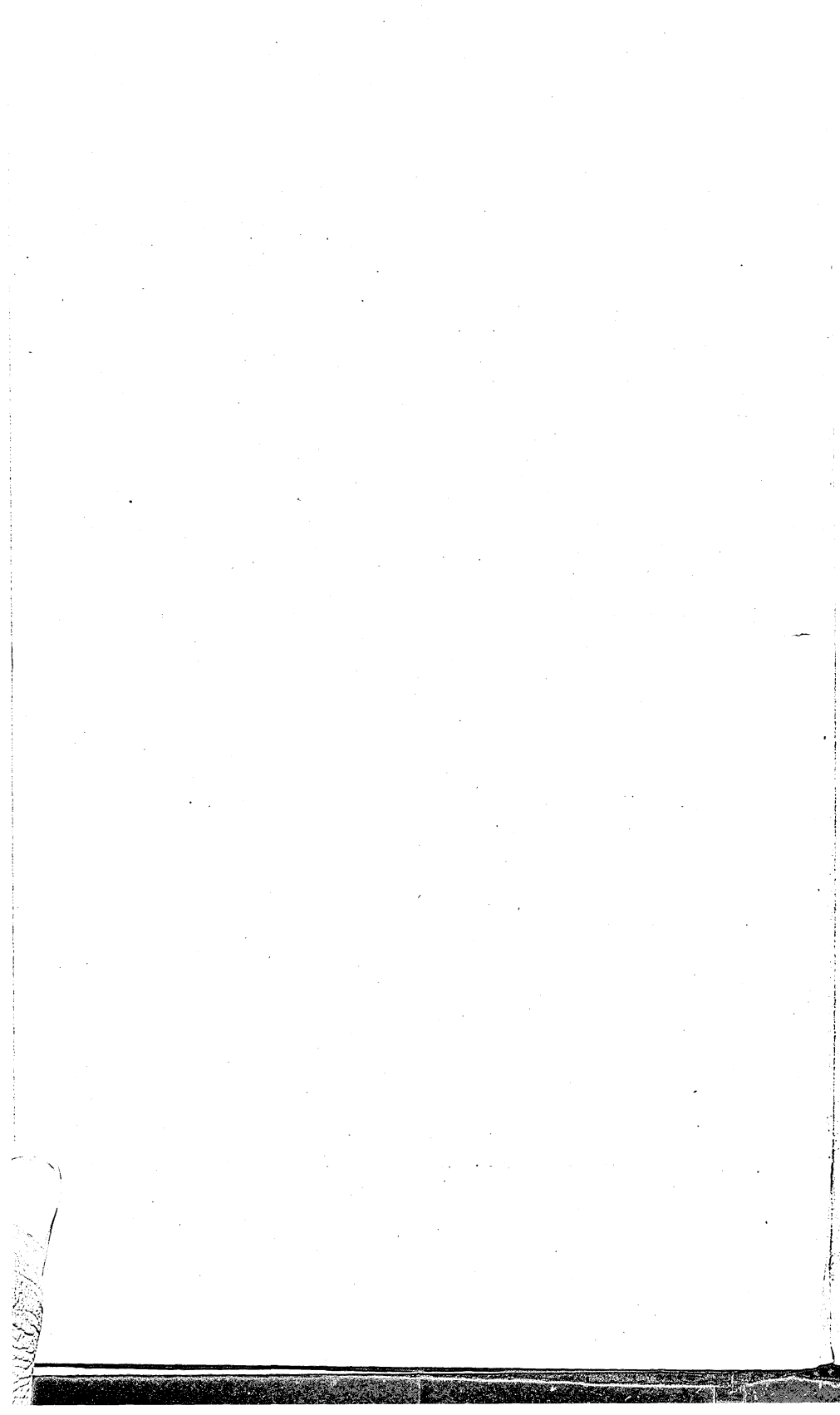
प्रथम वर्ग में प्रथम रहे। एम० ए० की डिग्री प्राप्त करके आप काशी-हिंदूकालेज में अध्यापक और प्रयागविश्वविद्यालय में परीक्षक हुए। संवत् १९६३ में आप पटना के सरकारी कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए। यहाँ से दो वर्ष की छुट्टी लेकर आप कलकत्ता गए और वहाँ विश्वविद्यालय में अध्यापक तथा वसुमल्लिक वेदांत-व्याख्याता नियुक्त हुए। १९६६ में कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने इन्हें अपनी सिनेट का सदस्य बनाया। आज-कल आप पटना-कालेज में अध्यापक हैं*।

पांडेयजी को विद्याभ्यास का बहुत अधिक व्यसन है। आप बड़े से बड़ा कोई ऐसा अधिकार पसंद नहीं करते जिसके कारण अध्ययन और अध्यापन में विघ्न पड़े। आप छोटे बड़े सबसे प्रेमपूर्वक मिलते हैं और उनके सब प्रकार के संदेह मिटाने का प्रयत्न करते हैं।

हिंदी की आपने बहुत कुछ सेवा की है। प्रारंभिक काल से ही आपको लेखादि लिखने का शौक़ है। अब तक आपके बहुत से विद्वत्ता-पूर्ण लेख, निबंध और व्याख्यान आदि अनेक पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके अधिकांश लेख पुरातत्त्व, इतिहास, विज्ञान आदि विषयों पर ही होते हैं। हिंदी में आपने यूरोपीय दर्शन, हिंदी-व्याकरणसार आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। संस्कृत में भी आपने साहित्य-रत्नावली, अशोकप्रशस्ति आदि कई ग्रंथ रचे हैं। आपने परमार्थ-दर्शन नामक एक ग्रंथ लिखा है जो पाखंड-खंडन-विषयक है। आप वर्तमान भारतवासियों के विचारों के विरोधी और नवीन समाजसुधार के पक्षपाती हैं। आप परदे के विरोधी और मांसभक्षण के पक्षपाती हैं। आप शीघ्र ही द्वीपांतरों की रीति नीति जानने के लिये विलायत जाने का विचार करते हैं। आप महामहोपाध्याय पंडित गंगाधर शास्त्री सी० आई० ई० के परमप्रिय और कृपापात्र शिष्यों में से हैं।

* कुछ समय से आप काशी के विश्वविद्यालय में आगये हैं।

पंडित रामावतार पांडेय संस्कृत के धुरंधर विद्वान् हैं, साथ ही हिंदी के परम भक्त और प्रभावशाली लेखक हैं। आपका स्वभाव बहुत ही सरल और निष्कपट है। इस ग्रंथ-लेखक को उक्त पांडेयजी से कई वर्षों तक संस्कृत पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त है* ।

---

* जबलपुर में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उसका सभापति-पद आपने ही ग्रहण किया था।
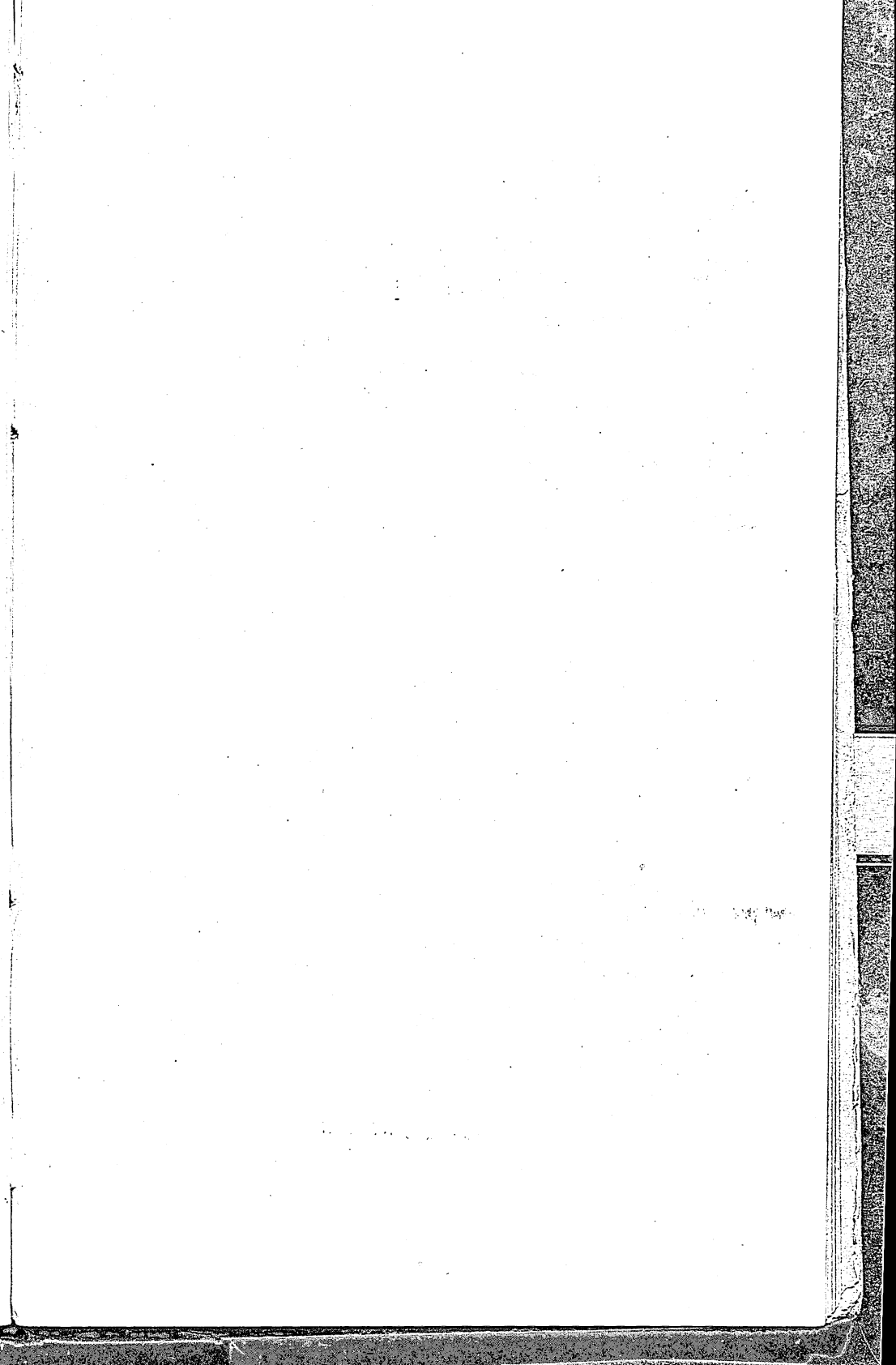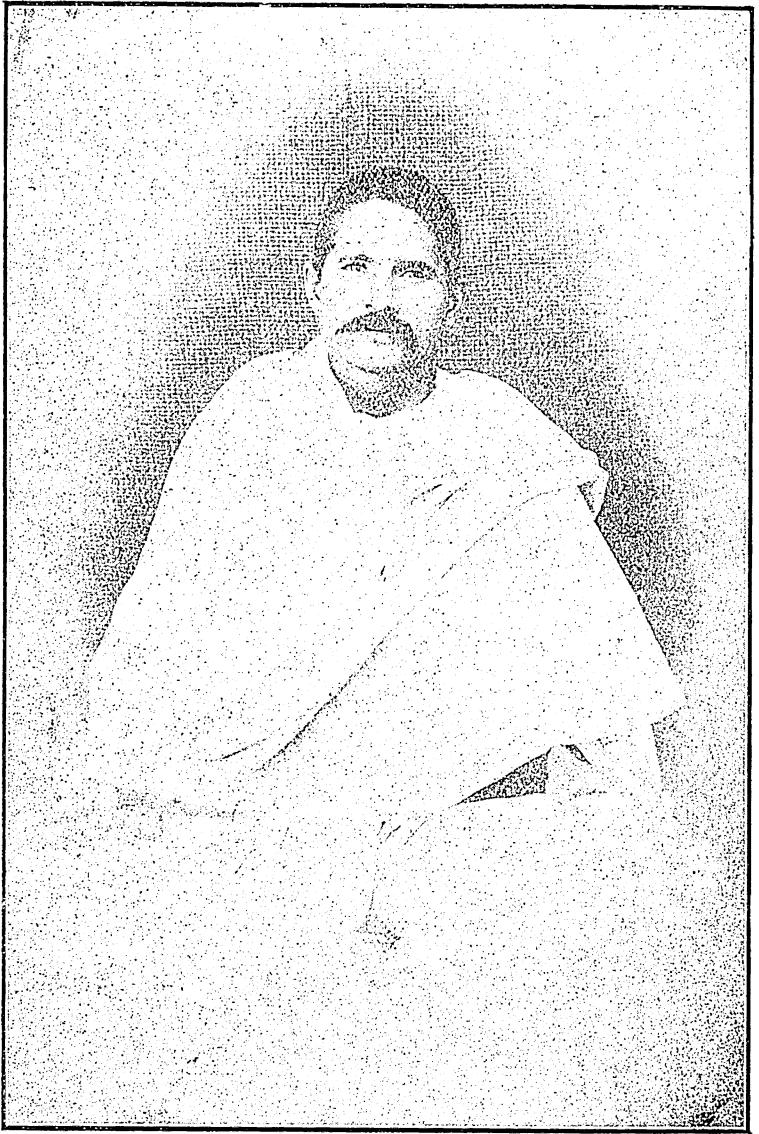
ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा ।

(३२) ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा ।

आगरा ज़िले में भदावर नाम की एक पुरानी छोटी रियासत है। वहाँ का भदौरिया राजवंश किसी समय बहुत प्रसिद्ध था। ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा का जन्म इसी भदौरिया वंश में आषाढ़ सुदी १२ संवत् १९३५ को हुआ था।

इनके नाना अपने दामाद के साहित्यप्रेम और वैद्यकज्ञान से प्रसन्न होकर उन्हें प्रायः अपने ही पास रक्खा करते थे। वहीं ननिहाल में मौजे उमरसेढ़ा ज़िला हरदोई में ठाकुर साहब का जन्म हुआ था। इनके पिता ठाकुर गणपतिसिंह हिंदीकाव्य के अच्छे ज्ञाता हैं। बाल्यावस्था से ही उन्होंने अपने पुत्र को हिंदी भाषा की शिक्षा दी थी। इसके अनंतर इन्होंने पिहानी में उर्दू मिडिल पास किया और सीतापुर और हरदोई के हाई स्कूलों में अँगरेज़ी की शिक्षा पाई। पर पीछे बिना कोई अच्छी परीक्षा दिए ही पंडित तुलसीराम स्वामी से संस्कृत पढ़ने के लिये मेरठ चले गये।

सन् १८९७ में ये अपने पिता सहित नौकरी की खोज में ग्वालियर चले गए। वहाँ ये परगना गोहद में नायब रजिस्ट्रार क़ानूनगो मुक़र्रर हुए। थोड़े दिनों पीछे मुरार के मुहकमा कागज़ातदेही माफ़ी के दफ़्तर में बदल दिए गए। उस समय ग्वालियर में हिंदी की चर्चा बहुत कम थी। तो भी इनको उस समय दो एक ऐसे युवक साथी

मिले जिन्हें हिंदी पर विशेष प्रेम था। सन् १९०० में बाबू कृष्णबल-देव वर्मा के ग्वालियर जाने पर उनके परिचय और प्रेरणा से ये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासद बन गए। उसी समय से इनका हिंदीप्रेम और अधिक बढ़ गया और इनकी प्रवृत्ति हिंदी लिखने की ओर हुई।

सबसे पहिले इन्होंने महाराज अशोक का जीवनचरित लिखा और वह काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ। इससे इनका उत्साह और भी बढ़ गया और ग्वालियर में ये दिन पर दिन हिंदीप्रेमियों की संख्या बढ़ाने लगे, यहाँ तक कि अंत में इनके उद्योग से ग्वालियर में "हिंदीसाहित्यसभा" स्थापित हो गई।

सन् १९०२ में इन्होंने "बालसखा-पुस्तकमाला" का आरंभ किया जो अब तक इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलती है। उसमें सबसे पहिले इन्होंने "बालभारत" निकाला। इस पुस्तक को देखकर पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी। इस पुस्तक का प्रचार भी अच्छा हुआ। ठाकुर साहब झाँसी में प्राय: पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदीजी से मिला करते थे और समय समय पर उनका आदेश पाते थे। इसी कारण ये द्विवेदीजी को अपना गुरु मानते हैं।

धीरे धीरे इन्होंने जनरल गारफ़ील्ड, धम्मपद और मित्रलाभ नामक पुस्तकें लिखीं। इसके बाद ये आगरा के राजपूत पत्र के संपादक हुए, परंतु सिद्धांत में भेद होने के कारण कुछ ही काल पीछे ये वह कार्य छोड़कर अलग हो गए। उन्हीं दिनों में प्रयाग से अभ्युदय निकला और ये उसके सहकारी संपादक हो गए। अभ्युदय में ये प्राय: एक वर्ष तक रह कर पुन: ग्वालियर लौट आए। इस बेर इन्होंने ग्वालियर में मनोरंजन हिंदी-ग्रंथप्रसारक मंडली स्थापित की और उस मंडली द्वारा हिंदी की कई अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित

कीं, जिनमें से बैजाबाई की जीवनी, ब्रह्मचर्य्य और गृहस्थाश्रम और श्रीकृष्णचरित मुख्य हैं।

सन् १९१० में ये ग्वालियर के शिल्प और वाणिज्य विभाग के साल्ट इंस्पेक्टर नियत हुए, पर इस पद पर दौरे के अधिक रहने के कारण इनका साहित्यसंबंधी काम ढीला पड़ गया। सन् १९१२ में जयाजीप्रताप का नवीन संस्कार हुआ और ये उसके सहकारी संपादक बनाए गए। अब तक ये उसी पद पर योग्यतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

इनका स्वभाव मिलनसार तथा इनके धार्मिक विचार उदार और विस्तृत हैं।

---

(३३) पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ।

पंडित शुकदेवविहारी मिश्र का जन्म लखनऊ ज़िले के इटौंजा ग्राम में सन् १८७६ ई० में हुआ था। ये पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० के छोटे भाई हैं। इनके पिता पंडित बालदत्त मिश्र बड़े सुकवि थे। उनका आदिम स्थान भगवंतनगर ज़िला हरदोई था, परंतु अपने चाचा के उत्तराधिकारी होने पर वे इटौंजे में रहने लगे। इसके अनंतर वे सकुटुंब लखनऊ में रहने लगे। इनकी माता प्रातःकाल कवितावली रामायण के छंदों का पाठ किया करती थीं। इसलिये आरंभ से ही उनके पुत्रों की रुचि भी हिंदी कविता की ओर हुई। मिश्रजी ने सन् १८८८ तक इटौंजा की ग्राम्य पाठशाला में पढ़ कर दूसरे वर्ष लखनऊ में अँगरेज़ी पढ़ना आरंभ किया। इन्होंने मिडिल से एफ़० ए० तक की सब परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास करके सदा सरकारी वज़ीफ़े पाए। सन् १९०० में इन्होंने बी० ए० पास किया, पर स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के कारण ये आगे न पढ़ सके। अच्छे होने पर १९०१ में इन्होंने हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा पास करके १९०२ से लखनऊ में वकालत आरंभ कर दी। सन् १९०८ में इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली और ये मुंसिफ़ हो गए। आज-कल ये सीतापुर में इसी पद पर नियुक्त हैं।

सन् १८९४ से ये हिंदी में स्फुट कविता करने लगे। और सन् १८९८ से ये अपने भाई पंडित श्यामविहारी मिश्र के साथ मिल कर
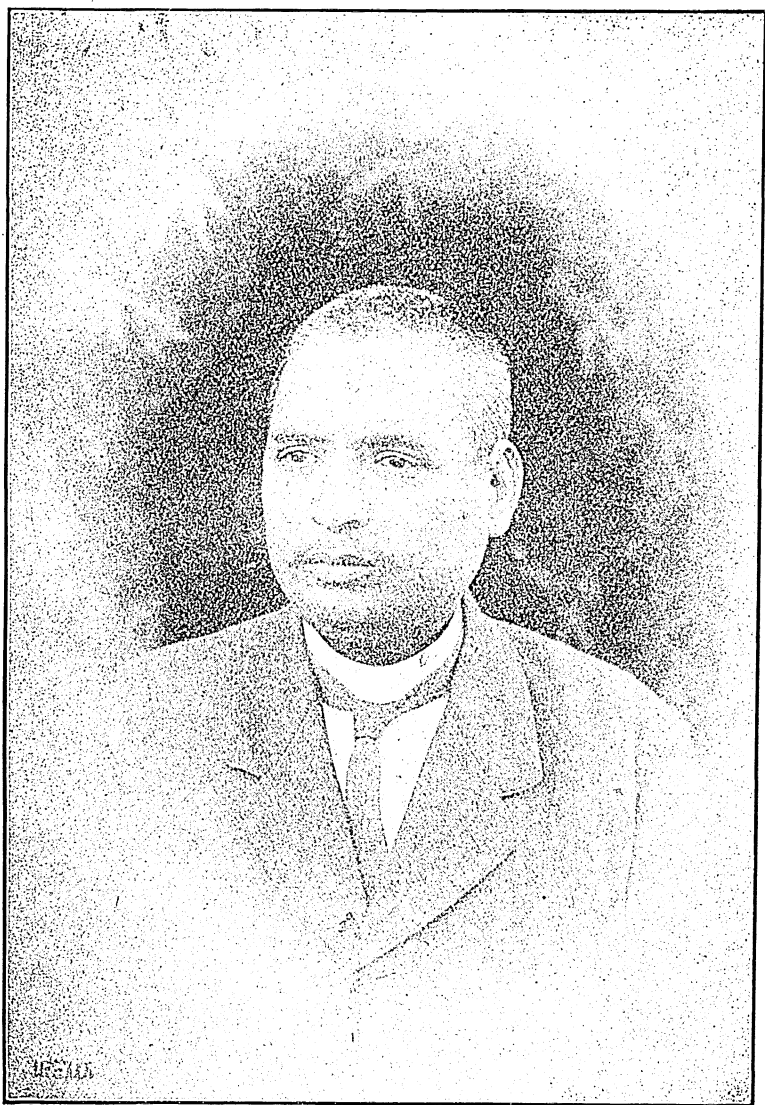
पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ।

कविता करने और लेख लिखने लगे। उसी समय से इन लोगों की समस्त रचनाओं में दोनों भाइयों का नाम रहता है।

इनका सबसे पहिला ग्रंथ लवकुशचरित्र पद्य में है जो सन् १८९८ में बना। सन् १९०० से मिश्र भ्राताओं ने गद्यरचना आरंभ की और समय समय पर सरस्वती तथा अन्य पत्रों में लेख लिखे। सब मिला कर अब तक इन लोगों ने १८-१९ ग्रंथ रचे। उनमें से भारतविनय, मदनदहन तथा रघुसंभव आदि प्रधान हैं। आज-कल ये लोग बूँदी-वारीश नामक एक ग्रंथ लिख रहे हैं जिसमें रघुवंश के ढंग पर बूँदी-राजवंश का इतिहास रहेगा।

इनके बनाए गद्य ग्रंथों में हिंदी-नवरत्न, व्यय, रूस का इतिहास, जापान का इतिहास और हिंदी ग्रंथों की खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त क्रोध, सम्मिलित हिंदूकुटुंब, कान्यकुब्जों की दशा पर विचार आदि निबंध भी हैं। आज-कल ये अपने स्फुट लेखों का पूरा संग्रह प्रकाशित करने के विचार में हैं। इसके अतिरिक्त इन लोगों ने एक और ग्रंथ लिखा है जिसका नाम "मिश्रबंधुविनोद" है। उसमें हिंदी के प्रायः ४००० कवियों और लेखकों तथा १०००० ग्रंथों के नाम हैं। यह ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इसमें अच्छे अच्छे लेखकों की जीवनियाँ तथा उनकी रचनाओं की समालोचनाएँ होंगी। इन अंतिम दोनों ग्रंथों के रचयिता इन दोनों भाइयों के अतिरिक्त इनके ज्येष्ठ भ्राता पंडित गणेशविहारी मिश्र भी हैं*।

मिश्रभ्राताओं ने भूषणग्रंथावली नामक एक टीकाग्रंथ भी बनाया है. जिसमें भूषण के चार ग्रंथों पर ऐतिहासिक नोट और टीका लिखी गई है। ये संक्षिप्त इतिहास-माला नामक एक इतिहास

---

* कई वर्ष हुए, उक्त ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका।

ग्रंथावली का भी संपादन कर रहे हैं जिसमें संसार के सब देशों के संक्षिप्त इतिहास रहेंगे। अब तक इसमें पाँच देशों के इतिहास निकल भी चुके हैं। एक बेर पूर्नियानरेश राजा कमलानंदसिंहजी ने उस व्यक्ति को एक स्वर्णपदक देना चाहा था जिसका सर्वोत्तम लेख सन् १९०५ में सरस्वती में प्रकाशित हो। वह पदक मिश्रबंधुओं को सम्मिलित हिंदू कुटुंब के प्रथम खंड लिखने पर मिला था।

पंडित शुकदेवविहारी मिश्र तथा इनके भाइयों का उद्देश्य अपनी मातृभाषा हिंदी की सेवा करना और उससे कभी किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की इच्छा न करना ही है। ये अपना ख़ाली समय इसी काम में लगाते हैं।

बाबू हरिकृष्ण जौहर ।

(३४) बाबू हरिकृष्ण जौहर।

संवत् १९३७ भाद्र सुदी ५ गुरुवार को काशी में बाबू हरिकृष्ण का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम मुंशी रामकृष्ण और जाति खत्री है। पाँच वर्ष की अवस्था में इनको उर्दू और हिंदी की शिक्षा आरंभ हुई। समय पाकर इन्होंने फ़ारसी और संस्कृत का भी अध्ययन किया और उन दोनों भाषाओं के कई ग्रंथ पढ़े। सात वर्ष की अवस्था में इनकी अँगरेज़ी शिक्षा आरंभ हुई। पर धनाभाव के कारण बारह वर्ष की अवस्था ही में पढ़ना छोड़ कर इन्हें नौकरी ढूँढ़ने के लिये विवश होना पड़ा।

बाल्यावस्था में इनका स्वभाव बहुत ही चंचल था। उस समय ये बड़े स्वच्छंद और स्वेच्छाचारी थे। पर शीघ्र ही ये सँभल गए और इनके स्वभाव में योग्य परिवर्तन हो गया। उस समय इन्हें पुस्तकें पढ़ने का शौक़ हुआ और अँगरेज़ी, उर्दू तथा हिंदी की बहुत सी पुस्तकें इन्होंने थोड़े ही समय में पढ़ डालीं। पुस्तकें पढ़ने के लिये ये काशी की कार्माइकल लाइब्रेरी में जाया करते थे। उन्हीं दिनों एक विलक्षण घटना हुई। उक्त लाइब्रेरी में नित्य एक वृद्ध पंजाबी सज्जन भी आया करते थे। उन्होंने एक दिन इनसे कहा "तुम यहाँ आकर अख़बार क्यों नहीं पढ़ते ? पुस्तकें पढ़ने के लिये तो तुम ।) मासिक चंदा देकर उन्हें घर भी ले जा सकते हो।" उत्तर में इन्होंने अपने आपको चंदा देने के लिये असमर्थ बतलाया। दूसरे दिन उन्होंने

इनको पढ़ने के लिये उर्दू की बहुत सी पुस्तकें दीं। इनके बहुत कुछ पूछने पर भी उन पंजाबी सज्जन ने अपना नाम नहीं बताया और न इसके बाद इन लोगों में भेंट ही हुई। उनके उदार व्यवहारों की स्मृति अब तक बाबू हरिकृष्ण के मन में बनी हुई है।

इसके बाद ये नौकरी के लिये देश-परदेश घूमे, पर इन्होंने पुस्तकावलोकन न छोड़ा। जब जिस स्थान पर इन्हें जितना समय मिला इन्होंने उसे पुस्तकें पढ़ने में ही लगाया। अँगरेज़ी, उर्दू, हिंदी, बँगला, मराठी और गुजराती के प्रायः सभी अच्छे अच्छे लेखकों की रचनाएँ इन्होंने देखीं। इतिहास, भ्रमणवृत्तांत और जीवनचरित इन्हें विशेष प्रिय हैं।

बारह वर्ष की अवस्था में पढ़ना छोड़ कर इन्होंने काशी के भारत-जीवन यंत्रालय में नौकरी की। उसी समय इन्होंने उर्दू की राजहैरत पुस्तक का लिखना आरंभ किया था। यह पुस्तक विलासपुर (शिमला) के राजा विजयचंद की सहायता से छपी और शायद उन्हीं को समर्पित भी हुई। इसके पीछे इन्होंने हिंदी में चार भागों में कुसुमलता नामक ऐयारी का उपन्यास लिखा। अब तक उर्दू में चार तथा हिंदी में बहुत सी पुस्तकें इनकी लिखी प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें से कुछ अनुवादित भी हैं। इनकी आरंभ की लिखी हुई पुस्तकें न तो किसी गूढ़ विषय पर हैं और न विशेष महत्त्व की हैं। पर इधर चार पाँच वर्षों में इन्होंने जो पुस्तकें लिखी हैं वे अवश्य ही उपयोगी और साहित्य-भंडार में स्थान पाने योग्य हैं। उनमें से मुख्य ये हैं, अर्थात् जापानवृत्तांत, अफ़ग़ानिस्तान का इतिहास, भारत के देशी राज्य, रूस-जापान-युद्ध, पलासी की लड़ाई, सर्वेसेटिलमेंटदर्पण, ट्रांसलेशन एंड री-ट्रांसलेशन और एलिमेंटरी लेसंस ऑन ग्रामर। अंतिम दोनों पुस्तकें यथाक्रम एंट्रेंस और मिडिल के छात्रों की सहायता के लिये

अँगरेज़ी और बँगला पुस्तकों से अनुवाद की गई हैं। इनमें एक विशेषता और है। ये अपनी प्रसिद्धि नहीं चाहते। इसी लिये गत दस वर्षों में इन्होंने जितनी पुस्तकें लिखी हैं, उनमें से किसी पर इनका नाम नहीं है और भविष्य में भी अपनी बनाई पुस्तकों पर अपना नाम न देने का इनका विचार है।

अब तक इन्होंने काशी के भारतजीवन और द्विजराजपत्रिका, अजमेर के राजस्थान और बंबई के श्रीवेंकटेश्वर कार्यालय में पत्रसंपादन-विभाग में कार्य किया है। इसके अतिरिक्त ये काशी के मित्र और उपन्यासदर्पण नामक मासिकपत्रों का भी संपादन कर चुके हैं। इधर गत दस वर्षों से ये कलकत्ते के वंगवासी आफ़िस में काम करते हैं। आज-कल यही उसके प्रधान संपादक हैं। इधर इनका जीवन केवल पुस्तकें लिखने और पत्र सम्पादन करने में ही बीता है। विश्राम के समय ये निम्नलिखित स्वरचित पद गाकर बड़े प्रसन्न होते हैं—

कागज़ उढ़ना और बिछौना, कागज़ ही से खाना।
कागज़ लिखते लिखते, साधो! कागज़ में मिल जाना॥

बाबू हरिकृष्ण जौहर बड़े परिश्रमशील, स्वभाव के सीधे सादे और अपने सिद्धान्तों के दृढ़ हैं। हिंदी की सेवा करना और उसके सच्चे भक्तों पर श्रद्धा भक्ति रखना ये अपना परम कर्तव्य समझते हैं।

---

(३५) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, बैरिस्टर-एट-ला।

मिर्ज़ापुर के व्यवसायियों में बाबू महादेवप्रसाद बहुत प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने अपनी योग्यता और बाहुबल से लाह के व्यापार में लाखों रुपये पैदा किए हैं और अपनी मंडली तथा समाज में बहुत नाम पाया है।

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल इन्हीं बाबू महादेवप्रसाद के पुत्र हैं। जायसवाल महाशय का जन्म मिर्ज़ापुर में अगहन सुदी ६ संवत् १९३८ को हुआ था। बाल्यावस्था में घर पर साधारण शिक्षा पाने के अनंतर ये मिर्ज़ापुर के लंदन मिशन हाई स्कूल में भर्ती किए गए। इसके सिवाय घर पर इनकी प्राइवेट शिक्षा का भी बहुत अच्छा प्रबंध रहा और भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा के लिये कई अच्छे अच्छे अध्यापक नियुक्त रहे।

१८ वर्ष की अवस्था में एंट्रेंस पास करके आगे पढ़ने के लिये ये काशी चले आए। काशी में आकर इन्होंने स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास तथा अन्य योग्य साहित्यसेवियों का साथ किया। कुछ समय तक ये यहाँ की नागरी-प्रचारिणी सभा के उपमंत्री भी रहे। परंतु कई विशेष कारणों से अधिक दिनों तक काशी में इनकी स्थिति न रही। इन्हें फिर मिर्ज़ापुर लौटकर अपने घर का कारबार और व्यापार सँभालना

बाबू काशीप्रसाद जायसवाल एम० ए०, बैरिस्टर-एट-ला ।

पड़ा। चार वर्ष तक ये व्यापार में ही लगे रहे और उसमें इन्हें बहुत कुछ आर्थिक लाभ भी हुआ।

मिर्ज़ापुर में लाह का कारबार बहुत अधिक है और वहाँ इसके चालीस पचास कारख़ाने भी हैं। बाबू काशीप्रसाद ने लाह के व्यापारियों की एक नियमबद्ध संस्था बनाने के उद्देश्य से "चेम्बर्स आफ़ कामर्स" के ढंग पर "चपड़ा-व्यापारिक सभा" स्थापित की, जिसने आगे चल कर अच्छी उन्नति की।

इन चार वर्षों में भी इन्हें जितना अवकाश मिलता उसमें ये विद्याध्ययन और सरस्वती-सेवा ही करते थे। विद्या की ओर इनकी विशेष रुचि देखकर इनके पिता ने अपने मित्रों की सम्मति से ४ अगस्त सन् १९०६ को विद्याध्ययन के लिये इन्हें इँगलैंड भेजा। चार वर्ष तक इँगलैंड में रह कर इन्होंने साथ ही साथ बी० ए० और बैरिस्टरी की परीक्षा सम्मानपूर्वक पास की। साथ ही इन्होंने चीनी भाषा में भी परीक्षा दी जिसमें एकमात्र ये ही उत्तीर्ण हुए। उसमें इन्हें कई सहस्र की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप मिलीं और कालेज ने इन्हें अपना फ़ेलो भी चुन लिया।

इँगलैंड में डाक्टर ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली तथा मिस्र, टर्की और चीन के बहुत से छात्रों से इनकी अच्छी घनिष्ठता हुई। बीच में इन्होंने कई बेर जर्मनी, फ़्रांस और स्वीज़रलेंड आदि देशों की सैर की। इँगलैंड से लौटते समय ये टर्की और मिस्र होते हुए लंका पहुँचे। उसी अवसर पर इनके पिता लंका जाकर इन्हें रामेश्वर और जगदीश के दर्शन कराते हुए घर ले आए। कुछ दिनों तक घर रह कर ये कलकत्ते चले गए और वहीं बैरिस्टरी करने लगे।

जायसवाल महाशय फ़रासीसी भाषा भी जानते हैं और अब

जर्मन भाषा सीख रहे हैं। इन्होंने इतिहास, पुरातत्त्व, अर्थशास्त्र और भाषातत्त्व का अच्छा अध्ययन किया है। बंगाल की एशियाटिक सोसायटी के ये मेंबर हैं। उसके जर्नल में इतिहास तथा अन्य विषयों पर इनके कई अच्छे अच्छे लेख निकल चुके हैं जिनकी प्रशंसा बड़े बड़े विद्वानों ने की है। इसके अतिरिक्त कलकत्ते के लॉ जर्नल, इंडियन एंटिक्वेरी तथा वीकली नोट्स आदि प्रतिष्ठित सामयिक पत्रों में इतिहास तथा क़ानून पर इनके अच्छे अच्छे लेख प्रायः निकला करते हैं। मानव-धर्म-शास्त्र का रचना-काल इन्होंने ईसा से १५० वर्ष पूर्व निश्चय किया है जिसका समर्थन जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने किया है। सन् १९१२ में ये कलकत्ता-विश्वविद्यालय में भारतीय इतिहास के लेकचरर नियुक्त हुए थे पर सन् १९१३ के मध्य में किसी राजनैतिक कारण के आधार पर भारतसरकार ने इनकी तथा इनके अन्य दो सहयोगियों की नियुक्ति पर आपत्ति की, जिसके कारण इन्हें उस पद से अलग होना पड़ा ❀। इस पर सर गुरुदास बेनर्जी ने इनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि इनके समान योग्य आदमी मिलना दुस्तर होगा।

इँगलैंड जाने से पूर्व ही इन्हें मातृभाषा हिंदी से बहुत प्रेम था और ये समाचारपत्रों में फुटकर लेख दिया करते थे। पहले पहल "लार्ड कर्ज़न की वक्तृता" "बक्सर" "कौशांबी" आदि पर हिंदी में इनके लेख निकले थे। इसके सिवाय इन्होंने "कलवार गज़ट" नामक एक जातीय पत्र निकाला था जिसका संपादन ये स्वयं करते थे। डाक्टर हार्नली के हिंदी-व्याकरण के आधार पर इनके कई अच्छे अच्छे लेख निकल चुके हैं। विलायत से ये बराबर अपने भ्रमण तथा अनुभव-संबंधी लेख प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती में छपने के लिये

❀ कई वर्ष बाद आप वहां फिर लेकचरर नियत कर लिए गए थे।

भेजते रहे। तृतीय हिंदी-सहित्य-सम्मेलन में "हिंदी-राज्यशासन का उपक्रम" शीर्षक आपका एक लेख पढ़ा गया था जिसका अँगरेज़ी भाषांतर भी छप गया है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आपने समय समय पर धन द्वारा सहायता की है। उसके हाल में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जो चित्र है वह आपका ही दिया हुआ है। सभा की पत्रिका के मुखपृष्ठ पर भारतेंदुजी का जो मोटो (Motto) छपता है वह आपके ही प्रस्ताव का फल है। खड़ी बोली की कविता के आप पक्ष-पाती हैं और उसमें कविता भी करते हैं। दुःख का विषय है कि समयाभाव के कारण अब आपकी हिंदी-सेवा बहुत कम हो गई है।

इनके पाँच छोटे भाई और दो बहिनें हैं। इनके अनुज बाबू गोविंदप्रसाद झालदा ज़िला मानभूम में आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। इनके दो पुत्र और दो कन्याएँ हैं।

बाबू काशीप्रसाद का स्वभाव बहुत मिलनसार और सरल है। बड़े बड़े विद्वानों द्वारा प्रशंसा प्राप्त करने पर भी इन्हें अभिमान छू नहीं गया है। निस्संदेह ऐसा योग्य पुत्र पाकर बाबू महादेवप्रसाद अपने को धन्य समझते होंगे।

---

(३६) पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए० ।

पंजाब का कांगड़ा प्रांत प्राचीन काल में त्रिगर्त्त कहलाता था। वहाँ के सोमवंशी राजा जब मुलतान छोड़ कर पहाड़ों में आए थे तो अपने साथ पुरोहितों को भी लेते आए थे। उसी वंश के राजा हरिचंद्र ने गुलेर में राज्य स्थापित कर सन् १४२० में हरिपुर को अपना राज्यनगर बनाया था। उक्त राजा ने अपने कुछ पुरोहितों को "जडोट" ग्राम जागीर के तौर पर दे दिया था, वही पुरोहित 'जडोटिये' कहलाए। उन्हीं पुरोहितों के वंश में संवत् १८९२ में पंडित शिवरामजी का जन्म हुआ था जिन्होंने काशी आकर श्रीगौड़ स्वामी तथा अन्य कई विद्वानों से व्याकरण आदि शास्त्रों की बहुत अच्छी शिक्षा पाई थी। उनकी योग्यता और विद्वत्ता से प्रसन्न होकर जयपुर के महाराज सवाई रामसिंहजी ने उन्हें अपने पास रख लिया था। जयपुर में पंडित शिवरामजी ने प्रधान पंडित रह कर सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ाए थे और अच्छा यश प्राप्त किया था। अभी हाल में संवत् १९६८ में उनका परलोकवास हो गया।

पंडित चंद्रधर शर्म्मा उक्त पंडितजी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका जन्म २५ आषाढ़ संवत् १९४० को जयपुर में हुआ था। बाल्यावस्था में इन्होंने अपने पिताजी से ही शिक्षा पाई थी। उसी समय इन्हें संस्कृत का विशेष अभ्यास कराया गया था। बहुत ही छोटी अवस्था में इन्हें संस्कृत बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया था। जिस समय ये पाँच छः वर्ष के थे उस समय इन्हें तीन चार सौ श्लोक और अष्टा-

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए०।
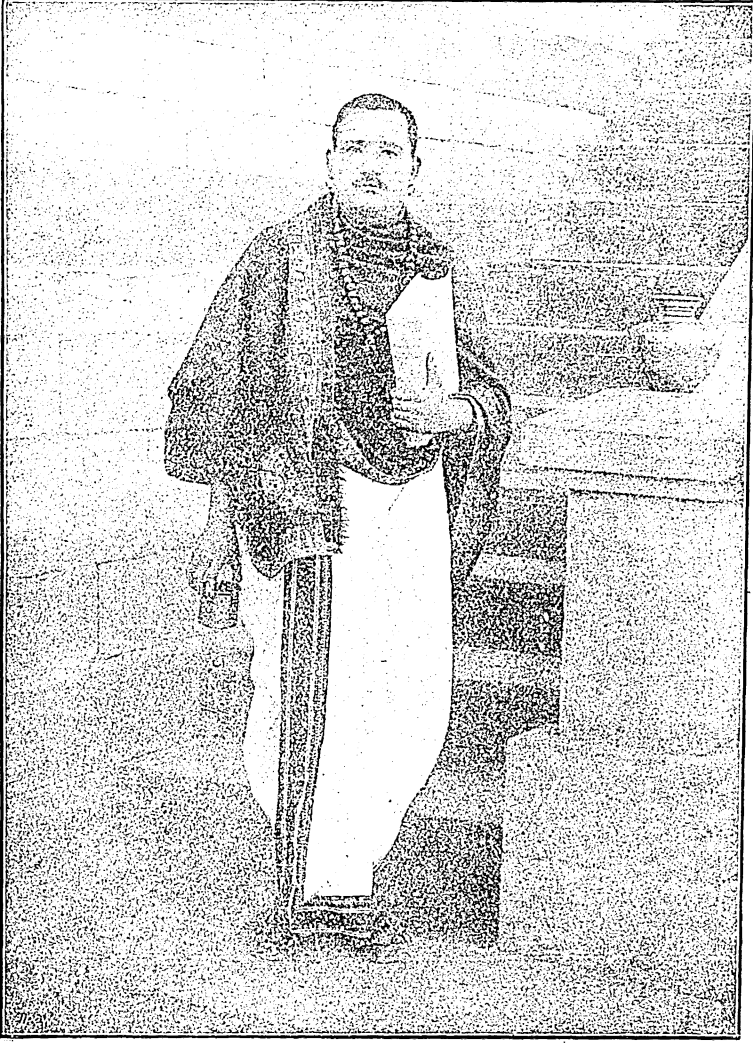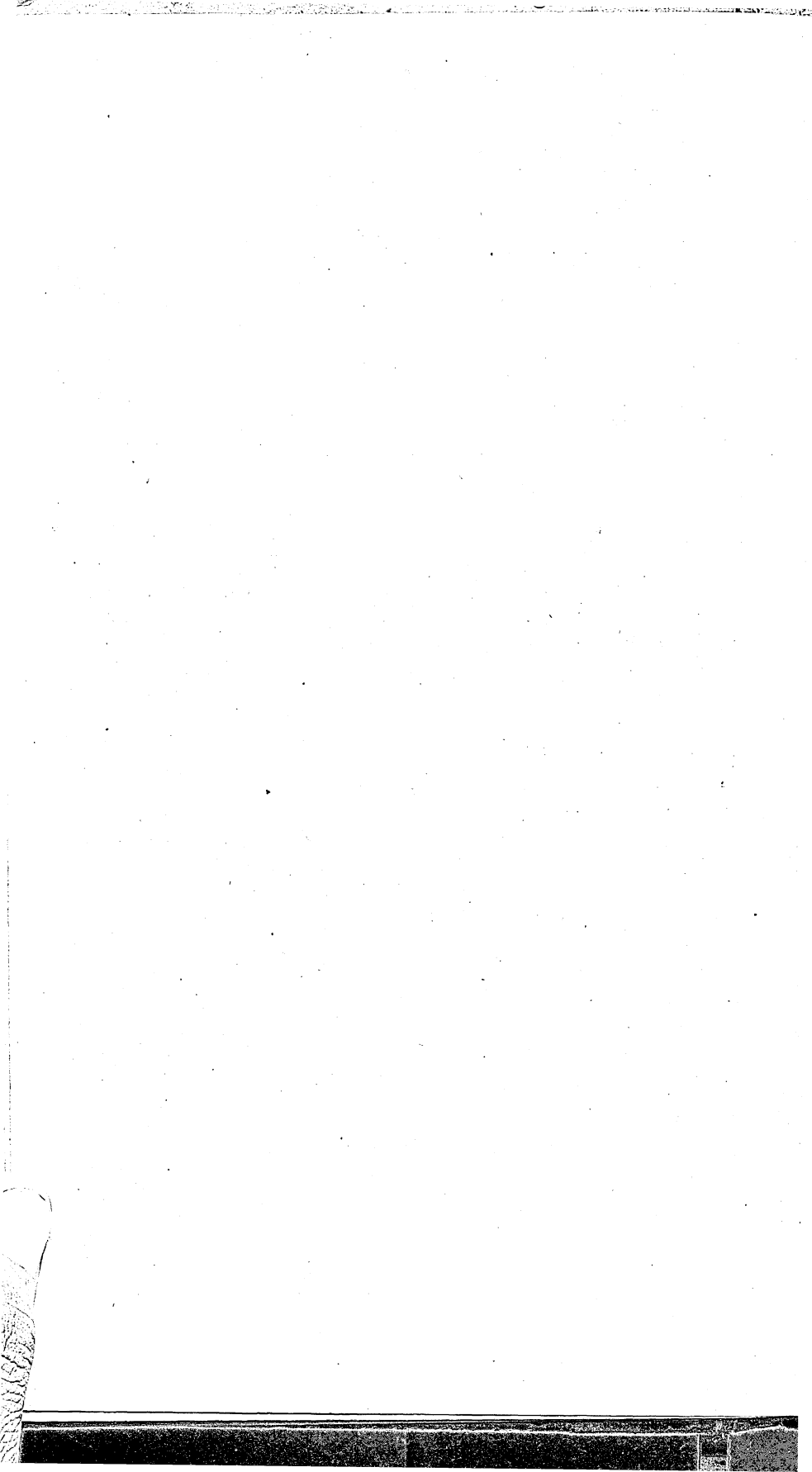
ध्यायी के दो अध्याय कंठस्थ थे। नौ दस वर्ष की अवस्था में एक बेर इन्होंने संस्कृत का छोटा सा व्याख्यान देकर भारतधर्ममहामण्डल के कई उपदेशकों को चकित कर दिया था। प्रसिद्ध मासिक पुस्तक काव्य-माला के संपादक महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी की कृपा से इनके हृदय में देशसेवा, साहित्यप्रेम आदि कई उपयोगी विचारों के अंकुर उत्पन्न हुए थे।

सन् १८९३ में इन्होंने जयपुर के महाराज कालेज में अँगरेज़ी पढ़ना आरंभ किया। छः ही वर्ष में सन् १८९९ में ये प्रयाग-विश्व-विद्यालय की एंट्रेंस परीक्षा में प्रथम हुए और कलकत्ता-विश्वविद्या-लय की उसी परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इनकी इस सफलता के कारण जयपुर-राज्य ने इन्हें एक स्वर्णपदक दिया था। उसी वर्ष इन्होंने महाभाष्य पढ़ना आरंभ किया। सन् १९०२ में इन्होंने जयपुर के मानमंदिर के जीर्णोद्धार में सहायता दी और सम्राट्सिद्धांत नामक ज्योतिष ग्रंथ के कई अंशों का बहुत योग्यतापूर्वक अनुवाद किया जिसके लिये उस कार्य के अध्यक्ष दो अँगरेज़ सज्जनों ने उनकी बहुत प्रशंसा की। उसी समय लेफ्टिनेंट गैरट के साथ इन्होंने अँगरेज़ी में "दी जयपुर आबजर्वेटरी एंड इट्स बिल्डर" नामक ग्रंथ लिखा था। दूसरे वर्ष सन् १९०३ में ये प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा में प्रथम हुए और इसके लिये इन्हें जयपुर-राज्य से एक स्वर्णपदक और बहुत सी पुस्तकें मिलीं। साथ ही साथ ये वेद और प्रस्थानत्रय का भी अभ्यास कर रहे थे। इनका विचार दर्शनशास्त्र में एम० ए० की परीक्षा देने का था, परंतु जयपुर-राज्य के आग्रह से खेतड़ी के स्वर्गवासी राजा साहब के संरक्षक बन कर इन्हें मेयो कालेज अजमेर जाना पड़ा। आज-कल ये वहीं जयपुर के सब कुमारों के शिक्षक और निरीक्षक हैं।

पंडितजी ने वैदिक साहित्य, भाषातत्त्व, दर्शन और पुरातत्त्व का अनुशीलन किया है और अँगरेज़ी और संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, पाली और बँगला, मराठी आदि भाषाओं से भी ये परिचित हैं।

सन् १८९७ में इनका परिचय जयपुर के स्वर्गीय जैनवैद्यजी से हुआ था। उसी समय इनका झुकाव हिंदी की ओर हुआ। दोनों सज्जनों ने मिलकर हिंदी की सेवा करने की प्रतिज्ञा की थी। तदनुसार सन् १९०० में इन लोगों ने जयपुर का नागरीभवन स्थापित किया था। इन्होंने कई वर्ष तक "समालोचक" का संपादन भी किया था। इसके सिवाय और बहुत से पत्रों में प्राय: इनके लेख निकला करते हैं।

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के कार्यों से ये बहुत सहानुभूति रखते हैं और बहुत दिनों से उसके सभ्य हैं। सभा द्वारा प्रकाशित 'लेखमाला' का संपादन आज-कल ये ही करते हैं। जो काम ये करते हैं वह प्राय: चुपचाप ही करते हैं क्योंकि नाम की इन्हें उतनी इच्छा नहीं रहती। औरों का शिक्षक बनने की अपेक्षा ये स्वयं विद्यार्थी बनना अधिक पसंद करते हैं इसीलिये इनके समय का अधिकांश पुस्तकावलोकन में ही बीतता है। कदाचित् यही कारण है कि अब तक हिंदी पाठकों को इनके द्वारा यथेष्ट लाभ नहीं पहुँच सका है। इस समय इनके एक पुत्र और दो कन्याएँ हैं।

गुलेरीजी का स्वभाव बहुत ही नम्र और निष्कपट है और ये सनातन हिंदू धर्म के सिद्धांतों के कट्टर अनुयायी हैं।

—:o:—
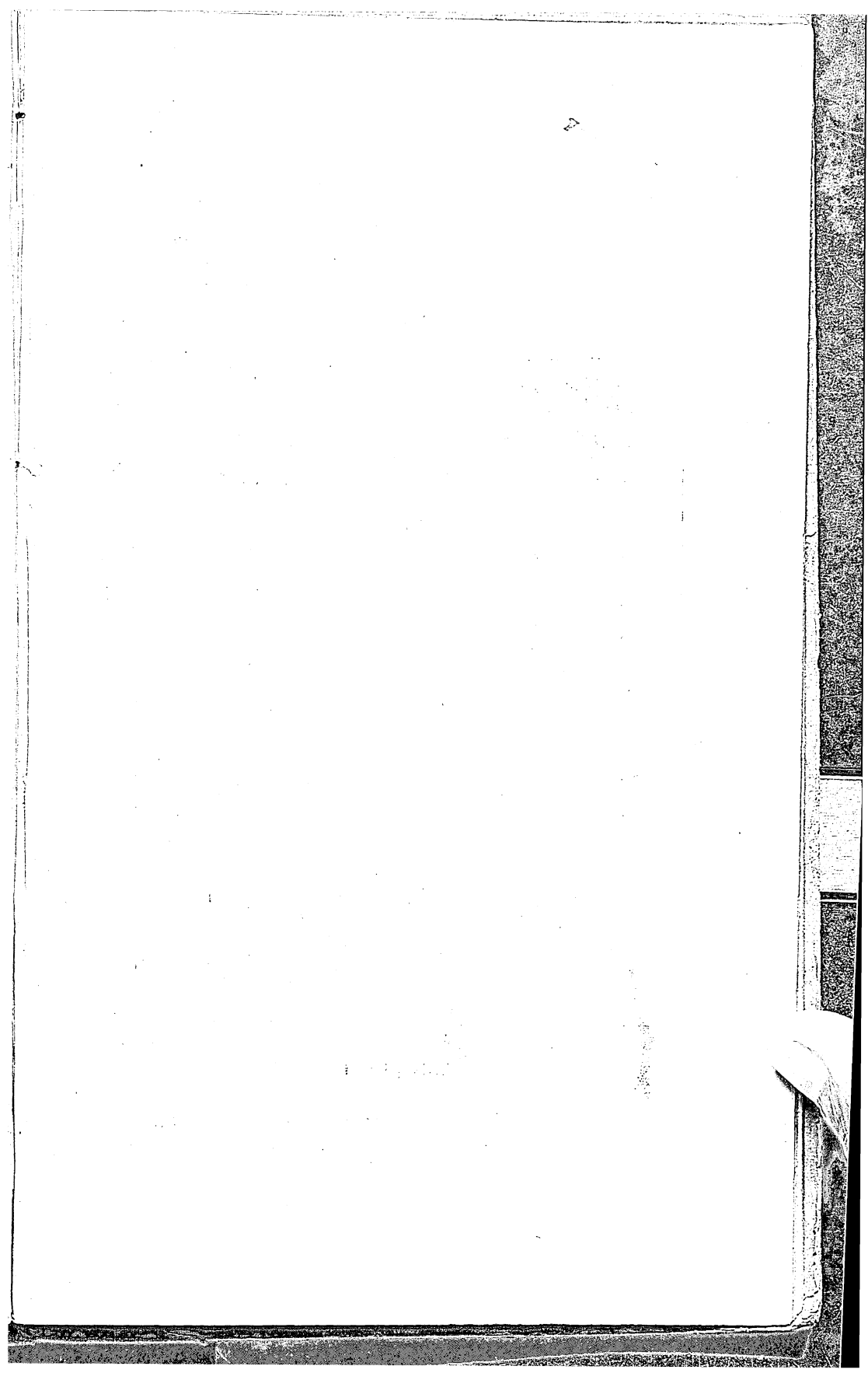
पंडित रामचंद्र सुक्ल।

(३७) पंडित रामचंद्र शुक्ल ।

गोरखपुर ज़िले में रापती नदी के किनारे भेड़ी नामक ग्राम गर्गगोत्री शुक्ल ब्राह्मणों का एक बहुत प्राचीन पीठ है। पूर्व में सरवार के प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुलों को भी, जिनके अधिकार में बहुत सी भूमि थी, अपने स्वत्व और मान की रक्षा के लिये शस्त्र उठाना पड़ता था। किसी ब्राह्मणकन्या के साथ बलात् निकाह करने पर उद्यत एक अत्याचारी इमाम वा नवाब को मार उसकी रियासत पर अधिकार करने की जनश्रुति इन शुक्लों के विषय में प्रसिद्ध है। पंडित रामचंद्र शुक्ल के पितामह पंडित शिवदत्त शुक्ल भेड़ी ही में रहते थे, केवल बीच बीच में नगर (बस्ती ज़िले की एक रियासत जो अब ज़प्त हो गई है) आते जाते थे। पंडित रामचंद्र शुक्ल की दादी को नगर की बूढ़ी रानी साहबा कन्या करके मानती थीं। इनके पितामह की मृत्यु ३० ही वर्ष की अवस्था में हो गई, इससे इनकी दादी अपने एक-मात्र पुत्र पंडित रामचंद्र के पिता को लेकर अधिकतर रानी साहबा के साथ ही रहने लगीं। वहाँ फ़ारसी की उत्तम शिक्षा पाकर पिता ने क्वींस कालिजिएट स्कूल से एंट्रेंस पास किया और वे सरकारी नौकरी करने लगे। नगर के पास ही रानी साहबा ने अगोना (पो० कलवारी) ग्राम में इन्हें कुछ भूमि देकर एक अलग घर भी बनवा दिया। पंडित रामचंद्र शुक्ल का जन्म संवत् १९४१ आश्विन की पूर्णिमा को अगोना ग्राम में हुआ। ४ वर्ष तक तो ये उसी ग्राम में रहे। इसके पीछे

१८८८ में इनके पिता हमीरपुर की राठ तहसील में सुपरवाइज़र क़ानूनगो होकर गए और अपने साथ परिवार को भी लेते गए। वहीं पर ६ वर्ष की अवस्था में पंडित गंगाप्रसाद ने पंडित रामचंद्र को अक्षरारंभ कराया। वहाँ के हिंदी-उर्दू स्कूल में ये हिंदी इतने उत्साह के साथ पढ़ने लगे कि दो ही वर्ष में चौथे दरजे में आ गए। अपनी दादी से रामायण और सूरसागर तथा अपने पिता से रामचंद्रिका और भारतेंदु के नाटकों को ये बड़ी रुचि से सुनते थे। सन् १८९२ में इनके पिता की नियुक्ति सदर क़ानूनगो के पद पर मिर्ज़ापुर हुई। वे परिवार को राठ ही में छोड़ कर स्थान आदि ठीक करने के लिये मिर्ज़ापुर गए। इसी बीच में एक ऐसी शोचनीय घटना हुई जिसने पंडित रामचंद्र शुक्ल के आगामी जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव डाला। इनकी माता बीस दिन के एक बच्चे (इनके सबसे छोड़े भाई कृष्ण-चंद्र) को छोड़ कर परलोक सिधारीं। इनके पिता १३, १४ घंटे बाद पहुँचे और सबको लेकर मिर्ज़ापुर चले आए।

मिर्ज़ापुर ही में पंडित रामचंद्र शुक्ल के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ है। वहाँ के जुबिली स्कूल में ये ९ वर्ष की अवस्था में भरती होकर उर्दू के साथ अँगरेज़ी पढ़ने लगे। सन् १८९३ में इनके पिता ने दूसरा विवाह किया। परंपरागत कुरीति के अनुसार पंडित रामचंद्र का विवाह भी १२ ही वर्ष की अवस्था में काशीनिवासी पंडित रामफल पांडे ज्योतिषी की कन्या से हुआ। १४½ वर्ष की अवस्था में अर्थात् १८९८ के अंत में इन्होंने मिडिल पास किया। अपने दरजे में इनका नंबर बराबर प्रथम रहा। इनके पड़ोस में पंडित विंध्येश्वरी-प्रसाद संस्कृत-साहित्य के एक भावुक और तेजस्वी विद्वान् रहते थे। वे कभी कभी अपने शिष्यवर्ग को लेकर जंगल पहाड़ों की ओर निकल जाते और उत्तरचरित आदि के श्लोकों को बड़े ही मधुर स्वर से पढ़ते

थे। बालक रामचंद्र भी उनके साथ प्रायः चले जाते थे क्योंकि इन्हें प्राकृतिक दृश्यों से बड़ा प्रेम है। इस सत्संग से इन्हें संस्कृत सीखने की प्रवृत्ति हुई और हिंदी का प्रेम दृढ़ हुआ। इन्हीं दिनों में इनका बाबू काशीप्रसाद जायसवाल का साथ हुआ जिससे हिंदी की ओर इनका उत्साह और भी बढ़ा। ये एक बेर काशी गए। वहाँ भारतेंदु के मकान के नीचे पंडित केदारनाथ पाठक से परिचय हुआ। फिर तो पाठक जी की कृपा से इन्हें हिंदी और बँगला की अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ने को और हिंदी के नए पुराने लेखकों की लंबी चौड़ी चर्चा सुनने को मिलने लगी। १९०१ के आरंभ में इन्होंने लंदन मिशन स्कूल से एंट्रेंस पास किया। इसी समय के लगभग बाबू भगवानदास हालना से इनकी मित्रता हुई।

पुस्तक पढ़ने का व्यसन इन्हें आरंभ ही से था। छात्रावस्था में ही स्थानिक मेयो-मेमोरियल लाइब्रेरी से अँगरेज़ी की पुस्तकें लेकर एक एक बजे रात तक पढ़ते। इनकी पढ़ने की सनक देख कर इनके साथी हँसते भी थे। एंट्रेंस पास करने के अनंतर एफ़० ए० में पढ़ने के लिये प्रयाग की कायस्थपाठशाला में इन्होंने नाम लिखाया। पर थोड़े ही दिनों में कुछ ऐसे गृहविवाद उपस्थित हुए कि इन्हें उस समय पढ़ना छोड़ देना पड़ा, यहाँ तक कि ये कुछ दिनों के लिये मिर्ज़ापुर छोड़ कर बस्ती (अगोना) जाकर रहे। स्वतंत्र और खरी प्रकृति होने के कारण इन्हें उन दिनों सरकारी नौकरी से बड़ी अरुचि थी, जिसका पूर्ण आभास Hindustan Review में प्रकाशित इनके What has India to do ? नामक लेख से मिलता है। अंत में क़ानून पढ़ने के लिये ये प्रयाग गए। वहाँ दो वर्ष पूरे कर घर पर रह कर परीक्षा देने के विचार से ये मिर्ज़ापुर आए। कुछ दिनों के बाद वे वहाँ के मिशन स्कूल के मास्टर हुए और १९०६ में वकालत का इम्तिहान

दिया पर कृतकार्य न हुए। तीन वर्ष अर्थात् १९०८ तक ये मिशन स्कूल ही में रहे। इसके उपरांत काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का हिंदी-कोश आरंभ हुआ और ये उसके सहायक संपादक के रूप में बुलाए गए। चार वर्षों से ये नागरी-प्रचारिणी पत्रिका का भी संपादन कर रहे हैं।

तेरह वर्ष की अवस्था में खिलवाड़ की तरह पर इन्होंने एक "हास्य-विनोद" नाम का नाटक लिखा जिसे एक महाशय ने हँसते हँसते फाड़ डाला। "संयोगता स्वयंवर" और "दीपनिर्वाण" को देख इन्हें पृथ्वीराज नाटक लिखने की इच्छा हुई और उसके दो अंक इन्होंने लिख भी डाले। इनके अतिरिक्त अपने सहपाठी लड़कों की निंदा में भी ये कवित्त और दोहे इत्यादि जोड़ते थे। १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने "मनोहर छटा" नामक की एक कविता लिखी जो सरस्वती में प्रकाशित हुई। फिर तो इनके बहुत से लेख और कविताएँ सरस्वती, समालोचक आदि पत्रों में निकले। १८९९ में हिंदीलेखकों में बहुत सी कुप्रथाओं (जैसे अनुवाद को स्वरचित ग्रंथ बतलाना) के विरुद्ध इन्होंने प्रयाग के Indian People नामक अँगरेज़ी पत्र में एक लेखमाला निकाली थी जिसके कारण हिंदी संवादपत्रों में बहुत दिनों तक बड़ा कोलाहल रहा। ये समय समय पर गुप्त वा प्रगट रूप में हिंदी के संबंध में अँगरेज़ी पत्रों में भी लिखा करते हैं।

इनके लेखों में बिलकुल इनके निज के विचार रहते हैं। इनके निबंध अधिकांश गूढ़ और जटिल होते हैं इससे चाहे साधारण हिंदी पाठकों का मनोरंजन उनसे न हो पर हिंदी की उच्च शिक्षा के लिये वे आगे चल कर बड़े काम के होंगे। साहित्य विषय पर "कविता क्या है ?" "भारतेंदु की समीक्षा", "उप-

न्यास", "भाषा का विस्तार" आदि इनके निबंध बड़े गूढ़ हैं। "शिशिरपथिक", "वसंतपथिक", "भारतवसंत" आदि कविताएँ भी रुचिर दार्शनिक भावों को लिए हुए हैं। मनोविकारों पर भी इनकी लेखमाला गहन है। फुटकर निबंधों और कविताओं के अतिरिक्त इनकी लिखी और अनुवादित पुस्तकें ये हैं—कल्पना का आनंद (एडिसन के Essay on the Imagination का अनुवाद), मेगास्थिनीज़ का भारतवर्षीय विवरण (अँगरेजी से अनुवादित), राज्यप्रबंधशिक्षा (सर टी माधवराव के Minor Hints का अनुवाद), बाबू राधाकृष्णदास का जीवनचरित और अमिताभ (Light of Asia का पद्यानुवाद-अपूर्ण और अप्रकाशित) ।

पंडित रामचंद्र शुक्ल के पिता अभी तक मिर्ज़ापुर में अव्वल दरजे के सदर क़ानूनगो हैं। इनसे छोटे दो और सहोदर भाई हरिश्चंद्र और कृष्णचंद्र हैं जो कालिज और स्कूल में पढ़ते हैं। संतति इन्हें छः है, २ पुत्र और ४ कन्याएँ ।

---

(३८) बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ।

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त का जन्म अग्रवाल वैश्यकुल में संवत् १९४२ की पौष शुक्ला अष्टमी को काशी में हुआ। इनके पिता स्वर्गीय बाबू माताप्रसाद एम० ए०, एल० सी० एस० काशी के एक प्रसिद्ध विद्वान् और व्यापारकुशल पुरुष थे। वे कई भाषाओं के जानकार और हिंदी के प्रेमी थे। दिसंबर १९०४ में उनका स्वर्गवास हो गया।

आरंभ में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त को घर में ही हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी की साधारण शिक्षा दी गई। इसके अनंतर ये स्कूल में भर्ती किए गए। छात्रावस्था में ही इन्होंने अपने पिता के पुस्तकालय की कई भाषाओं की अनेक पुस्तकें पढ़ डालीं। इनके पिता के पास जो समाचारपत्र आते थे उन्हें भी ये देख लिया करते थे। उसी समय इनके मन में हिंदी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। कई विशेष कारणों से इन्होंने बहुत शीघ्र ही स्कूल छोड़ दिया और प्राइवेट अभ्यास बढ़ाया। ग्रंथों और समाचारपत्रों के अवलोकन से इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त की। पीछे से इन्होंने बँगला, मराठी और गुजराती भाषाएँ भी सीखीं और इन भाषाओं के अनेक ग्रंथ पढ़ डाले। कभी कभी ये अँगरेज़ी समाचारपत्रों में लेखादि लिखते हैं। इस भाषा में इन्होंने एक पैम्फ़लेट भी लिखा है।

सन् १९०१ में इन्होंने हिंदी लिखना आरंभ किया। जनवरी

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ।
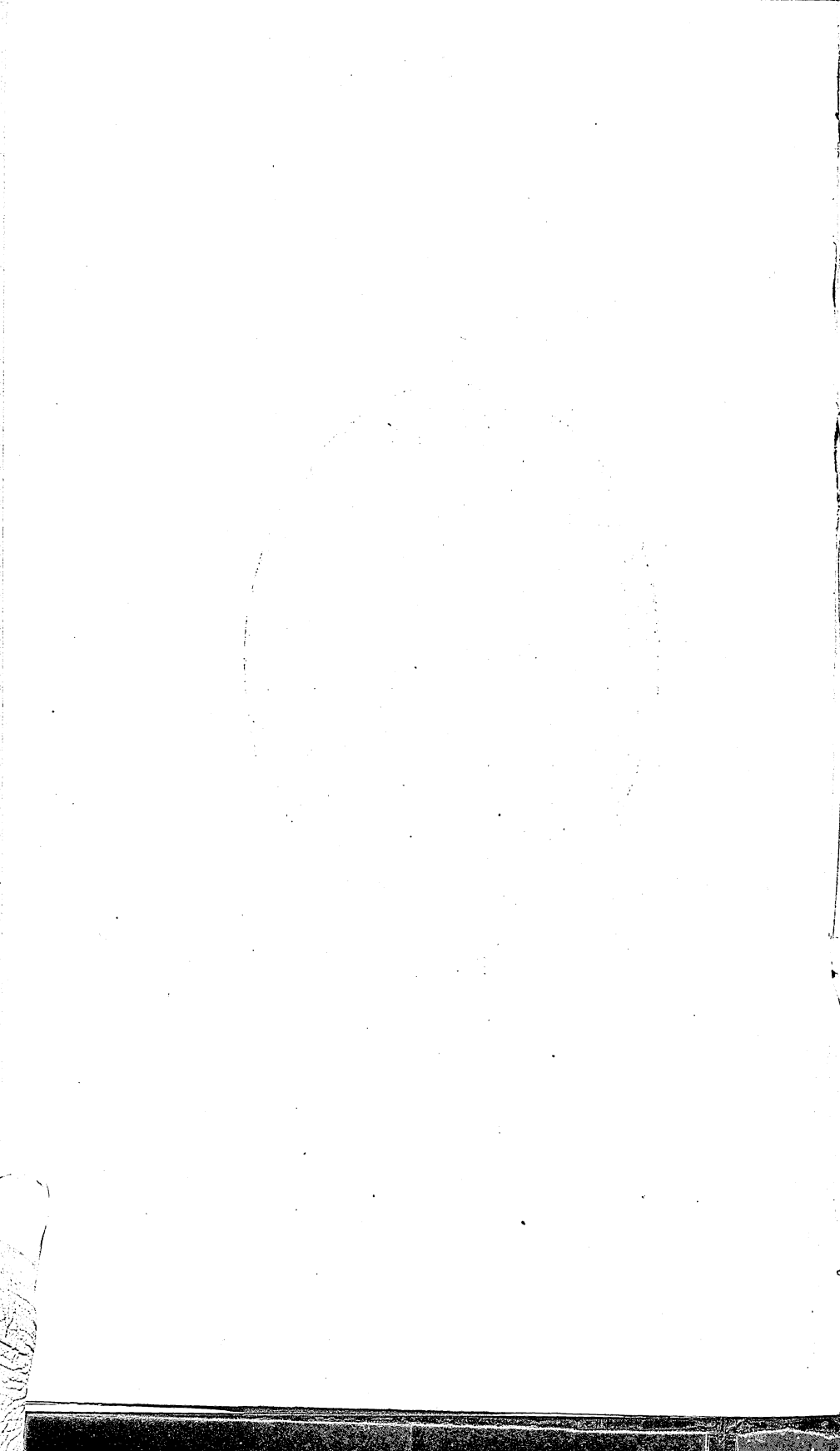
१९०२ में इनकी लिखी सबसे पहली पुस्तक नूरजहाँ प्रकाशित हुई। उसी वर्ष इन्होंने देहली से वहाँ के दरबार का विस्तृत विवरण लिख कर प्रयागसमाचार में भेजा था। सन् १९०३ में ये काशी के "मित्र" नामक मासिक पत्र के संपादक हुए और एक वर्ष तक उसका संपादन करते रहे। उसी वर्ष इन्होंने "पूना में हलचल" नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसकी अच्छी प्रशंसा हुई। १९०४ में ये भारतजीवन के संपादक हुए, परंतु पिता के देहांत हो जाने के कारण उसी वर्ष इन्हें इस कार्य से पृथक् हो जाना पड़ा। इसके पीछे एक वर्ष तक ये घर का कारबार देखते और पुस्तकें लिखते रहे। इस बीच में इनकी लिखी और अनुवाद की डाकृर आनंदीबाई की जीवनी, हमीर, वीरपत्नी, लंका टापू की सैर, तिब्बतवृत्तांत, पन्ना राज्य का इतिहास, कुँवरसिंह की जीवनी, रानीभवानी, हवाई नाव तथा अन्य कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इसी समय इनकी संपादकता में मासिक "इतिहासमाला" प्रकाशित होने लगी जिसमें इनकी लिखी डाकृर बर्नियर की भारतयात्रा, भारत का इतिहास, सिखों का साहस आदि पुस्तकें निकलीं। कर्नल टाड-कृत राजस्थान के इतिहास का पूर्वार्द्ध भी इन्होंने लिखा जो पाँच खंडों में प्रकाशित हो चुका है। पंजाब से हिंदी का कोई समाचारपत्र न निकलते देख इन्होंने लाहोर के उर्दू साप्ताहिक सनातनधर्म गज़ट के मालिकों को हिंदी में भी दो पृष्ठ में प्रकाशित करने के लिये १००) रु० दिए थे। १९०५ के अंत में इन्होंने पुनः भारतजीवन की संपादकता ग्रहण की। उसी समय इन्होंने देशी कारीगरी की दशा, देशीराज्य, दादाभाई नौरोजी की जीवनी, स्वदेशी आंदोलन, स्वदेश की जय आदि कई पुस्तकें लिखीं।

भारतजीवन के अध्यक्ष बाबू रामकृष्ण वर्म्मा का देहांत होने पर सन् १९०७ के आरंभ में ये भारतजीवन का संपादन छोड़ कर हिंदी-

केसरी का संपादन करने के लिये नागपुर चले गए। कई मास पीछे ये काशी चले आए और यहाँ एक महीने रह कर श्रीवेंकटेश्वरसमाचार का संपादन करने के लिये बंबई चले गए। कई महीने बाद ये वहाँ से भी चले आए और घर के कारबार में लग गए। १९०९ के आरंभ में मारवाड़ी पत्र के संपादक होकर ये पुनः नागपुर चले गए। वहाँ भी प्रायः नौ मास रह कर और बीमार होकर काशी चले आए। यहाँ से इन्होंने हिंदी-साहित्य नामक मासिक पत्र निकाला। उसमें लक्ष्मीदेवी, रामाभिषेक नाटक, दुःख और सुख आदि पुस्तकें निकलीं। थोड़े ही दिनों पीछे वह पत्र भी बंद हो गया और ये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होनेवाले हिंदी-शब्दसागर नामक कोश के चार संयुक्त संपादकों में नियत हो गए। कोई दस महीने बाद ये इस्तीफ़ा देकर उस काम से भी अलग हो गए और अब स्वतंत्र रूप से व्यापार में लगे हुए हैं।

बाबू गंगाप्रसाद गुप्त अपनी काशीस्थ बिरादरी कमेटी के सेक्रेटरी, प्राइमरी एजुकेशन कमेटी के चौक वार्ड के सेक्रेटरी और कई सार्वजनिक संस्थाओं के सभ्य हैं। इन्होंने भारत के कई प्रांतों में यात्रा भी की है❀।

❀ इधर कई साल से आपने काशी में एक छापाख़ाना खोला है। हिंदी-केसरी का पुनः प्रकाशन भी आपने वहीं से किया है।